अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-23, 16-31 जुलाई, 2017

23 जुलाई : लोकमान्य तिलक जयन्ती
विनम्र स्मरण

31 जुलाई : मुंशी प्रेमचन्द-जयन्ती
विनम्र स्मरण

कहानी
'पूस की रात'

उपकार का स्मरण

''जिनसे हम उपकृत होते हैं उनके गुणों का बहुत विश्लेषण भी हम नहीं करना चाहेंगे, न कर सकेंगे। तिलक जैसों के गुणों की लोग जब चर्चा करते हैं और उनके ज्ञान गरिमा की प्रशंसा करते हैं तो मेरी समझ में वह बात नहीं आती। उनमें ज्ञान तो बहुत था, गुण भी बहुत थे। बिना गुण के तो कोई सेवा भी नहीं कर पाता है। लेकिन जनता को तिलक का स्मरण न उनके वैदिक ज्ञान के लिए है, न उनके व्यक्तिगत गुणों के लिए। उन्होंने जो एक विशेष सेवा हमारी की है उसका वह स्मरण करती है। तिलक ने हमें चेतना दी। हम भान भूले थे। नहीं जानते थे कि हमारा भला किसमें है। उन्होंने हमें वह भान कराया! अपना सारा जीवन वे इसी काम के लिए जीये! हम उनके इस उपकार का स्मरण करते हैं।''

–विनोबा

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 23, 16-31 जुलाई, 2017

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. आज की चुनौतियां... 2
2. विद्यार्थी और छुट्टियां... 3
3. तिलक का उपकार... 4
4. भूमि का सवाल... 7
5. मूल्यों में परिवर्तन से क्रांति आती... 8
6. भारतीयता का भविष्य... 11
7. पूस की रात... 15
8. जीवन को लीलता औद्योगिक विकास... 18
9. गतिविधियां एवं समाचार... 19
10. कविताएं... 20

संपादकीय

आज की चुनौतियां

संपूर्ण क्रांति आंदोलन के बाद, राजनीतिक दलों के दायरे के बाहर कई बड़े जन-आंदोलन हुए। इन सब में किसानों के आंदोलन सबसे अधिक हुए हैं। इसके अलावा भ्रष्टाचार के खिलाफ व स्त्रियों के प्रति अत्याचार के खिलाफ भी जन-आंदोलन हुए। दो अन्य पकार के आंदोलन भी देखने को मिले। एक जातिगत आरक्षण एवं धर्म आधारित उद्देश्य से प्रेरित आंदोलन तथा दूसरे नये राज्य बनाने के लिए आंदोलन। किन्तु ये दोनों प्रकार के आंदोलन अंततः राजसत्ता में पहुंचने या उसमें भागीदारी के लिए अपना आधार बढ़ाने के लिए थे। एक स्तर पर ये आंदोलन लोक एकता के निर्माण के माध्यम कत्तई नहीं बन सकते थे, न ही इनमें किसी नये समाज के निर्माण का सपना था।

वैश्विक पूंजी के वर्चस्व एवं वैश्विक पूंजीवादी बाजार के दायरे के अंतर्गत सारे संसाधनों को लाने की नीतियों के फलस्वरूप लोकएकता की संभावना और कमजोर हुई है।

आजादी के बाद राजसत्ता के नियंत्रण व निर्देशन में पूंजी के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। नेहरू, पटेल एवं अम्बेडकर तीनों इसके पक्षधर थे। किन्तु इसके साथ लोक नियंत्रित एवं लोक निर्देशित पूंजी का एक स्वायत्त दायरा होता तो संसाधनों के दोहन व श्रम के शोषण की संस्थागत-संरचना कमजोर पड़ जाती। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इस कारण लोक संचालित जीवन जहां था, अर्थात जल, जंगल, जमीन, खनिज आदि प्रकृति प्रदत्त जीवन आधारों की बुनियाद पर जिन समुदायों ने श्रम कर अपने समाजों को विकसित किया था, वे समाज-समुदाय कमजोर होते चले गये या तो विस्थापित हुए या उनके श्रम-मूल्य को न्यूनतम स्तर पर रखा गया।

लोक नियंत्रित एवं लोक निर्देशित पूंजी व संसाधनों का दायरा खत्म हो जाने के बाद, जब सन् 1990 के बाद वैश्विक पूंजी व वैश्विक पूंजीवादी बाजार को निर्बाध प्रवेश का अवसर मिला, पूंजी के केन्द्रीकरण व बाजार के माध्यम से दोहन-शोषण उनके लिए एक आसान रास्ता था।

एक और बात को समझना होगा। जब तक राजसत्ता के नियंत्रण व निर्देशन में पूंजी थी तब तक साम्प्रदायिकता एवं पूंजी का गठजोड़ कमजोर था। किन्तु वैश्विक पूंजी के प्रवेश के बाद पूंजी व साम्प्रदायिकता का गठजोड़ मजबूत हुआ है। सन् 1990 के बाद साम्प्रदायिकता के उभार को इस रूप में भी देखना होगा।

आज भारत को वैश्विक पूंजी का सबसे आकर्षक स्थान बनाने की हर प्रकार की कोशिश की जा रही है। इसके फलस्वरूप जल, जंगल, जमीन, खनिज आदि सभी प्रकृति प्रदत्त जीवन आधारों से उन पर आश्रित समुदाय बेदखल किये जा रहे हैं। और जो लोग इनसे जुड़े रहेंगे वे अति गरीबी का जीवन बिताने के विवश होंगे, क्योंकि उनके श्रम का मूल्य न्यूनतम होगा।

वैश्विक पूंजी के प्रवेश के बाद एक अन्य बड़ा परिवर्तन भी हुआ है। जिन क्षेत्रों में हम सदा से स्वावलंबी थे, उन क्षेत्रों में भी अब हम बहुराष्ट्रीय निगमों पर आश्रित हो रहे हैं। अन्न, बीज, जल-प्रबंधन स्थानीय प्रसंस्करण आदि इनके ज्वलंत उदाहरण हैं। स्थानीय स्तर पर हर प्रकार से स्वायत्तता एवं स्वावलंबन को खत्म करने से राष्ट्रीय स्तर पर संप्रभुता अत्यन्त क्षीण हो गयी है।

अतः आज चार मुख्य चुनौतियां हैं— (1) सम्प्रभुता का क्रमशः क्षीण होते जाना, (2) प्रकृति प्रदत्त जीवन आधारों का, पूंजीवादी वैश्विक बाजार द्वारा दोहन, (3) किसान, आदिवासी, मछुआरों व छोटे कारीगरों के श्रम का शोषण—इनमें भी महिलाओं का दोहरा शोषण तथा (4) लोक एकता को खंडित करने में तमाम प्रकार की शक्तियों का उभार, जैसे साम्प्रदायिक, जातीय, क्षेत्रीय, भाषाई आदि।

इन चुनौतियों से संघर्ष करने, लोकसत्ता का निर्माण करने तथा नये जीवन मूल्यों को समाज में दाखिल करने के लिए सभी अहिंसक क्रांतिकारी शक्तियों को एकजुट होकर राष्ट्रीय स्तर पर आंदोलन तथा सघन क्षेत्र स्तर पर बहिष्कार व वैकल्पिक रचना का कार्यक्रम लेना होगा। उन सारे क्रांतिकारी समूहों को जो राजसत्ता में हिस्सेदारी से अपने को अलग रखते हैं तथा शांतिमय व शुद्ध साधनों पर विश्वास रखते हैं, उन्हें तत्काल एकजुट होकर आंदोलन की रणनीति बनाना होगा। सर्व सेवा संघ को इसकी पहल करनी होगी। बिमल कुमार

विद्यार्थी और छुट्टियां

❑ महात्मा गांधी

देहरादून से एक विद्यार्थी का हिन्दी में लिखा पत्र मिला है। उसका सार इस प्रकार है :

हमारे कॉलेज के छात्रावास में अब तक भंगी हमारी जूठन खाते रहे हैं। परंतु जब से जागृति हुई है हमने यह रिवाज बंद कर दिया है और हम उन्हें स्वच्छ चपातियां और दाल देते हैं। इससे हरिजन असंतुष्ट हैं। जूठन में उन्हें कुछ घी और व्यंजन मिल जाते थे। विद्यार्थी ये चीजें हरिजनों के लिए अलग नहीं रख सकते थे और यह कठिनाई भी है कि हमने जो नया रिवाज अपनाया है उसपर दृढ़ रह सकते हैं, मगर हरिजन जाति-भोजों वगैरह की जूठन लेना जारी रखेंगे। अब क्या किया जाये? और जब आप इस प्रश्न पर उत्तर दें तो साथ ही मैं आपसे यह भी जानना चाहूंगा कि हमारी छुट्टियां जो जल्दी ही आने वाली हैं, उनका हम उत्तम उपयोग कैसे करें?

पत्र-लेखक ने जो कठिनाई बतायी है, वह वास्तविक है। हरिजनों को जूठन की ऐसीआदत पड़ गयी है कि वे न केवल उनमें कोई असम्मान नहीं मानते, बल्कि उसकी आशा लगाये रहते हैं। उन्हें जूठन न मिले तो इसे वे निश्चित हानि समझेंगे। परंतु इस दुःखद सत्य से यही प्रकट होता है कि हरिजन और सवर्ण हिन्दू दोनों का कितना पतन हो गया है। विद्यार्थियों को इस बात की चिन्ता करने की जरूरत नहीं कि दूसरे स्थानों पर क्या होता है। उनके लिए पहली चीज सही रास्ते पर होना है और मैं उन्हें सुझाव दूंगा कि उनके लिए जो खाना आम तौर पर बनता है, उसमें से एक जुदा भाग वे निश्चयपूर्वक मेहतरों के लिए अलग रख दिया करें। देहरादून के विद्यार्थियों ने खर्च का प्रश्न उठाया है। मुझे भारत-भर के छात्रावास-जीवन का कुछ ज्ञान है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि विद्यार्थी आम तौर पर व्यंजनों और विलास की वस्तुओं पर, जितना चाहिए उससे कहीं अधिक, व्यय करते हैं। मुझे यह भी मालूम है कि बहुत-से विद्यार्थी अपनी थाली में, बहुत-सी जूठन न छोड़ना, शान के खिलाफ समझते हें। मेरा उनसे यह कहना है कि अपनी थाली में कुछ भी जूठन छोड़ना ही शान के खिलाफ बात है और गरीबों की अवहेलना का चिह्न है। किसी को भी, खास तौर पर विद्यार्थियों को, यह हक नहीं है कि वे जितना आसानी से खाया जा सके, उससे ज्यादा थाली में लें। एक विद्यार्थी का यह काम नहीं है कि वह व्यंजनों और विलास की वस्तुओं की संख्या बढ़ाये। विद्यार्थी जीवन हर बात में संयम का अभ्यास करने के लिए है और यदि वे संयम का तरीका अपनायें और अपनी थालियों में कुछ जूठन न छोड़ने की स्वच्छ आदत डाल लें, तो वे देखेंगे कि अपने लिए बने हुए मामूली खाने में से, अपने मेहतरों के लिए उदारतापूर्वक एक भाग अलग रख देने के बावजूद, उनके खर्च में कुछ बचत ही हो जायेगी।

और फिर इतना करने के बाद मैं उनसे आशा रखूंगा कि वे हरिजनों के साथ अपने सगे भाइयों-जैसा बरताव रखें, उनसे प्रेमपूर्वक बोलें और बतायें कि दूसरों की थाली की जूठन खाने की गंदी आदत छोड़ देना और अपने जीवन में दूसरे सुधार करना, उनके लिए क्यों जरूरी है। रही बात विद्यार्थियों के, छुट्टियों का उपयोग करने की, सो यदि वे उत्साह से काम हाथ में लें तो बेशक बहुत-से काम कर सकते हैं। उनमें से कुछ मैं गिना देता हूं :

1. छुट्टियों तक के लिए छोटा-सा सुकल्पित शिक्षा-क्रम बनाकर रात और दिन की पाठशालाएं चलाना।
2. हरिजन-मुहल्लों में जाकर उनकी सफाई करना और हरिजन लोग मदद दें तो ले लेना।
3. हरिजन-बालकों को सैर के लिए ले जाना, उन्हें अपने गांवों के नजदीक के दृश्य दिखाना, उन्हें प्रकृति का अध्ययन करना सिखाना, आसपास की चीजों में आम तौर पर उनकी दिलचस्पी पैदा करना और बातों-ही-बातों में, उन्हें भूगोल-इतिहास की काम चलाऊ जानकारी देना।
4. उन्हें 'रामायण' और 'महाभारत' की सरल कथाएं पढ़कर सुनाना।
5. सरल भजन सिखाना।
6. हरिजन लड़कों के शरीर पर जहां भी मैल पाया जाये, वह सब साफ कर देना और बड़ों तथा बच्चों, दोनों को स्वास्थ्य-विज्ञान के सरल पाठ सिखाना।
7. चुने हुए क्षेत्रों में हरिजनों की जनगणना करना और उनकी स्थिति की विस्तृत जानकारी इकट्ठी करना।

8. बीमार हरिजनों को डॉक्टरी सहायता पहुंचाना।

हरिजनों में क्या-क्या किया जा सकता है, उसका यह एक नमूना है। यह जल्दी-जल्दी में बनायी हुई सूची है, परंतु मुझे संदेह नहीं कि विचारशील विद्यार्थी इसमें बहुत-सी बातें बढ़ा लेगा।

मैंने अभी तक अपना ध्यान हरिजनों की सेवा तक सीमित रखा है, परंतु सवर्णों की भी एक सेवा करनी है, जो कम जरूरी नहीं है। सवर्ण कैसे भी हों, इसकी परवाह न करके विद्यार्थी अकसर अत्यन्त कोमल ढंग से उनमें अस्पृश्यता-निवारण का संदेश पहुंचा सकते हैं। इतना अधिक अज्ञान फैला हुआ है जिसे प्रामाणिक सत्साहित्य विवेकपूर्वक वितरित करके आसानी से दूर किया जा सकता है। विद्यार्थी अछूतपन मिटाने और न मिटाने वालों की सूची तैयार कर सकते हैं और उसे तैयार करते समय वे ऐसे कुंओं, पाठशालाओं, ताल-तलैयों और मंदिरों को दर्ज करा सकते हैं, जो हरिजनों के लिए खुले हैं और जो नहीं खुले हैं।

यदि ये सब काम वे ढंग से और लगातार करेंगे, तो उन्हें आश्चर्यजनक परिणाम दिखायी देंगे। हर एक विद्यार्थी को एक नोटबुक रखनी चाहिए, जिसमें उसे अपना काम ब्योरेवार दर्ज करना चाहिए। छुट्टियों के अंत में अपने काम की एक सर्वग्राही किन्तु संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार करके, प्रांतीय 'हरिजन सेवक संघ' को, भेजी जा सकती है। यहां दिये गये सुझावों में से कुछ या तमाम को दूसरे विद्यार्थी ग्रहण करें या न करें, मैं अपने पत्र-लेखक से यह आशा रखूंगा कि जो-कुछ उसने और उसके साथियों ने किया हो उसकी रिपोर्ट मुझे भेज दें।

यंग इंडिया, 1-4-1933

❑

23 जुलाई : लोकमान्य तिलक जयंती पर विशेष

तिलक का उपकार

❑ विनोबा

अव्यक्त आकर्षण

आज हम यहां तिलक महाराज की पुण्यतिथि के निमित्त इकट्ठे हुए हैं। अक्सर ऐसे नित्य नैमित्तिक प्रसंगों में मैं बहुत कम हिस्सा लेता हूं। लेकिन इस मर्तबा जब आप लोगों की तरफ से निमंत्रण आया तो उसका स्वीकार करने की इच्छा हुई। क्योंकि हमारे देश के, और खास करके हम जो विधायक कार्य करने वाले कार्यकर्ता हैं, उनके जीवन में, अभी एक संधिकाल आया है। तो एक साथ सोचने का जो भी निमित्त मिले उनका उपयोग कर लेने की जरूरत है। सह-विचार की दृष्टि से इस निमंत्रण को मैंने स्वीकार किया है।

तिलक महाराज को अब तीस साल हो चुके जब कि वे हम लोगों में देह से काम करते थे, लेकिन अब, उन्होंने जो विचार हमको दिये वे ही काम करते हैं। कुछ वर्षों के बाद शायद वे भी लुप्त हो जाय और जो भाव या गुण दुनिया में उनके द्वारा प्रस्तुत हुए थे, वे ही काम करें। इस तरह से मनुष्य-जीवन का स्मरण उत्तरोत्तर अव्यक्त होता जाता है। लेकिन इसलिए वह कम काम देता है ऐसी बात नहीं है। उल्टा, वह अधिक काम दे सकता है, यह हमारे अनुभव की बात है। हम जिन प्राचीन ऋषियों का स्मरण करते हैं, उनमें से कुछ ऐसे हैं कि जिनका जीवन हम थोड़ा-सा जानते हैं। कुछ ऐसे हैं कि जिनके जीवन के बारे में हम कुछ नहीं जानते, लेकिन जिनके विचार हमारे पास पड़े हैं। कुछ ऐसे हैं जिनके हम सिर्फ नाम जानते हैं। लेकिन कुछ तो ऐसे हैं जिनका नाम तक नहीं जानते हैं। फिर भी उनके स्मरण से हमको विशेष स्फूर्ति मिलती है। एक अव्यक्त आकर्षण का अनुभव हम करते हैं। और अव्यक्त आकर्षण व्यक्त आकर्षण से बहुत शक्तिशाली हेता है। पदार्थ-विज्ञानशास्त्री जानते हैं कि व्यक्त आकर्षण तो रत्तलों में नापा जा सकता है लेकिन जो अव्यक्त आकर्षण होता है, उसका कोई नाप ही नहीं हो सकता। वह अमेय, अपार और असीम होता है। सार इसका यह है कि जो कुछ शुभ आचरण किया होता है, वह व्यर्थ नहीं जाता। उसकी स्मृति उत्तरोत्तर अव्यक्त होती जायेगी तो भी परिणामतः वह अधिकाधिक तीव्र बनती है। यह कैसे होता है, हम नहीं जानते, लेकिन इसका अनुभव करते हैं। जादू का-सा असर होता है।

दो प्रकार के सत्पुरुष

सत्पुरुषों के दो प्रकार हैं। एक सत्पुरुष सूर्य के समान हैं, दुनिया को प्रकाश देते हैं और अलिप्त रहते हैं। उनका प्रकाश सबके लिए समान लाभदायी होता है। सूर्य किसी पर आक्रमण नहीं करता। ऊंचे आकाश में रहता है, लेकिन जमीन पर प्रकाश देता है। उसके प्रकाश का, लोग कैसा भी उपयोग करें उनकी मर्जी की बात है। उनके पाप पुण्य की

जिम्मेवारी सूर्य पर नहीं आती तो कुछ सत्पुरुष इस कोटि के होते हैं।

दूसरे सत्पुरुष अग्नि के जैसे होते हैं। अग्नि हमारे चूल्हे में प्रकट होता है और हमारी रसोई बनाने में मदद करता है। सूर्य की अपेक्षा अग्नि में उष्णता अधिक है ऐसी बात नहीं है। अगर सूर्य न होता, अग्नि भी नहीं होता। लेकिन सूर्य व्यापक है, अग्नि विशिष्ट है।

सूर्य हमारा भात नहीं पकाता, अग्नि ऐसे सेवा के काम कर लेता है। उससे प्रकाश भी मिलता है, लेकिन उसका मुख्य उपकार उसकी उष्णता है। वैसे सूर्य से भी उष्णता मिलती है, लेकिन उसका मुख्य उपकार शायद उसका प्रकाश ही गिना जायेगा। वैसे, उष्णुता और प्रकाश, अग्नि और सूर्य दोनों में है। लेकिन एक की उष्णता और दूसरे का प्रकाश हमारा ध्यान खींचता है। दोनों कोटि के पुरुष इतिहास में मिलते हैं। इस जमाने में रामकृष्ण परमहंस सूर्य-कोटि के सत्पुरुष थे और तिलक अग्नि-कोटि के थे।

बात ऐसी है कि जिन पुरुषों से लोगों ने अग्नि के समान प्रत्यक्ष सेवा पायी होती है उनके विषय में लोगों के दिल में एक विशेष प्रेम होता है। और जो सूर्य के जैसे होते हैं उनके विषय में लोगों के हृदय में पूज्यभाव होता है। जिन्होंने अग्नि जैसी हमारी सेवा की है ऐसे सत्पुरुषों का जब हम स्मरण करते हैं तो मानों हमारे कोई कुटुम्बी व्यक्ति के स्मरण जैसा लगता है। तिलक महाराज को अब तीस साल हो गये लेकिन वे हमको हमारे कुटुम्बी से लगते हैं।

उपकार का स्मरण

फिर, जिनसे हम उपकृत होते हैं उनके गुणों का बहुत विश्लेषण भी हम नहीं करना चाहेंगे, न कर सकेंगे। तिलक जैसों के गुणों की लोग जब चर्चा करते हैं और उनके ज्ञान गरिमा की प्रशंसा करते हैं तो मेरी समझ में वह बात नहीं आती। उनमें ज्ञान तो बहुत था, गुण भी बहुत थे। बिना गुण के तो कोई सेवा भी नहीं कर पाता है। लेकिन जनता को तिलक का स्मरण न उनके वैदिक ज्ञान के लिए है, न उनके व्यक्तिगत गुणों के लिए। उन्होंने जो एक विशेष सेवा हमारी की है उसका वह स्मरण करती है। तिलक ने हमें चेतना दी। हम भान भूले थे। नहीं जानते थे कि हमारा भला किसमें है। उन्होंने हमें वह भान कराया! अपना सारा जीवन वे इसी काम के लिए जीये! हम उनके इस उपकार का स्मरण करते हैं।

तिलक महाराज के विशेष उपकार के बारे में जब हम सोचते हैं, तो थोड़ा इतिहास हम को देखना चाहिए। सन् सत्तावन के स्वातंत्र्य युद्ध के बाद अंग्रेजों की सत्ता हमारे ऊपर जम गयी। हमारी मनोवृत्ति भी उस समय अवसन्न थी क्यों कि उस संग्राम में अंग्रेजों ने हमको बहुत दबाया था। साथ ही उनके विज्ञान का भी असर हमारे लोगों पर पड़ा था। ऐसी हालत में जब कांग्रेस का जन्म हुआ तो जिन लोगों ने कांग्रेस को जन्म दिया था, उन्होंने इतना ही सोचा कि हिन्दी जनता के दुःखों का हाल हमारे राज्यकर्ता पूरी तरह से जानते नहीं हैं, और कुछ दुःखों का भान खुद हमारी जनता को भी नहीं है। तो जनता को उसके दुःखों का भान कराना और उनके इस विचार के अनुसार कांग्रेस अपने दुःखों को अने जलसों में हर साल दुहराती रही। यह सिलसिला बीस साल तक चला।

लेकिन बाद में दिखायी दिया कि ऐसे छोटे-छोटे दुःखों को दूर करने की कोशिश करते रहेंगे तो उन दुःखों का कोई पार ही नहीं है। हमारे सारे दुःखों का जो मूल है उसी पर प्रहार करना चाहिए। जड़ जब तक नहीं काटते हैं, सिर्फ शाखाएं काटने से वे और ही बढ़ती जाती हैं। तो सब दुःखों का मूल कारण पारतंत्र्य और निवारण स्वराज ही है, यह भान लोगों को हुआ ओर 1906 की कांग्रेस में स्वराज्य का मंत्र दादाभाई नौरोजी ने हिन्दुस्तान को दिया। वे अस्सी साल के बूढ़े हो गये थे, मंत्र देकर वे एकांत में चले गये।

गीता की भाषा में

गीता ने हमें सिखाया है जब तक बुद्धि का निश्चय नहीं होता है तब तक कर्मयोग की शुरुआत ही नहीं हो सकती क्योंकि निश्चय बिना बुद्धि बहुशाख बनती है और बेकार हो जाती है। कांग्रेस ऐसी ही बहुशाख बन गयी थी। अनेक तर्क उसको सूझते थे और कोई निश्चय नहीं हो पाता था, आखिर बीस साल के बाद दादाभाई नौरोजी ने जनता से स्वराज्य का निश्चय कराया। यह गीता का पहला शिक्षण था।

इसके बाद तिलक का काम शुरू होता है। उन्होंने हम लोगों को गीता का दूसरा शिक्षण सिखाया। जब निश्चय हो गया तब साधक को उस निश्चय पर एकाग्र होने की जरूरत होती है। तिलक हिन्दुस्तान के दुःखों को प्रकट करते थे लेकिन उन पर वे जोर नहीं देते थे। वे यही समझते थे कि ''देखो, इन सबका मूल कारण गुलामी है।'' हर एक दुःख का संबंध वे स्वराज्य के साथ जोड़ देते थे। दूसरे किसी भी चीज पर वे हमारा ध्यान नहीं जाने देते थे। स्वराज्य का निश्चय हो जाने पर सारे राष्ट्र का ध्यान, उस निश्चय पर एकाग्र कराने का काम तिलक ने किया। यही उनका हमारे ऊपर मुख्य उपकार है।

अब जिस रोज तिलक गये उसी रोज गांधीजी का उदय हुआ। किसी ने उपमा भी दी थी कि पूर्णिमा के रोज जैसे पश्चिम में सूर्य का अस्त होता है, उसी समय ऊधर पूर्व की ओर पूर्ण चन्द्र का उदय होता है। वैसे ही तिलक महाराज गये और गांधीजी के नेतृत्व में असहकार का आरंभ हो गया। निश्चय में एकाग्रता होने पर साधना का आरंभ कर देना चाहिए। उसमें फिर फल की चिन्ता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि फल क्या मिलने वाला है यह तय है। इसलिए फल चिन्तन में समय और शाक्ति खोए बगैर सब समय, सारी शक्ति, और सारा चिन्तन साधना में लगा देना चाहिए। गीता का यह तीसरा शिक्षण गांधीजी ने हमें दिया।

तीन प्रतिनिधि

कांग्रेस का यह इतिहास गीता की कर्मयोग की भाषा में आपके सामने मैंने रखा। सबसे प्रथम निश्चय करना, उसके बाद सब ओर से वृत्तियों का प्रत्याहार करके निश्चय पर एकाग्र हो जाना और आखिर साधना में तन्मय हो जाना। कर्मयोग की ये तीन उत्तरोत्तर अवस्थाएं होती हैं। दादा भाई, तिलक और गांधी यथाक्रम इन तीन अवस्थाओं के प्रतिनिधि रहे। इन तीनों के मार्गदर्शन में जो महा प्रयत्न हुआ उसके फलस्वरूप अब हम स्वाधीन हुए हैं।

स्वराज्य तो अभी बनना है

लोग कहते हैं कि स्वात्य तो मिला, लेकिन सुराज्य लाना है। लेकिन मैं कहता हूं स्वराज्य अभी तक बना ही नहीं है, वह तो बनाना बाकी है। स्वराज्य-निर्माण की सत्ता हमें मिली है इतना ही कह सकते हैं। मिट्टी हमारे हाथ में आ गयी है। उसकी हम मूर्ति बनायेंगे। उसकी स्थापना होगी। यह काम हमारे प्रयत्न की राह देख रहा है।

हमने अपने को पहचाना ही नहीं है

अब हमको सोचना यह है कि स्वराज्य की इस मूर्ति को हम किस तरह का आकार दें। लेकिन रचनात्मक कार्यकर्ताओं में से कइयों का वह खयाल हो गया है कि यह काम तो सरकारी सत्ता ही कर सकती है; और वे महसूस करते हैं कि उनके हाथ में कोई खास शक्ति नहीं रह गयी है। और क्योंकि वे देखते हैं कि सरकार इस विषय में वैसा काम नहीं कर रही है, जैसा कि हम चाहते हैं, इसलिए वे असंतुष्ट और निराश हो रहे हैं। वैसे असंतोष का यह कारण हो सकता है, लेकिन निराशा का कारण तो मैं नहीं देखता हूं। क्योंकि इन कार्यकर्ताओं के मूल विचार को ही मैं गलत मानता हूं।

अगर हम लोग, जो सरकार में नहीं हैं, ऐसा सोचने लगें कि स्वराज्य-निर्माण की शक्ति सरकार की अपेक्षा हमारे हाथ में कम है, तो मैं कहता हूं कि हमने हमको ही पहचाना नहीं है। स्वराज्य को शकल देने की शक्ति सरकार के हाथ में जितनी है, उससे हमारे हाथ में ज्यादा है, इसकी पहचान जब तक हमको नहीं होगी तब तक हम हमारी शक्ति का उपयोग नहीं कर सकेंगे। लेकिन वह पहचान हो जायेगी तब हमको सरकार की तरफ देखने की जरूरत नहीं होगी, बल्कि सरकार ही हमारी तरफ देखेगी। इस बारे में एक दो दफा मैं पहले भी कह चुका हूं, लेकिन फिर से मैं आज इस को थोड़े में दोहराना चाहता हूं।

सेवक और सुधारक का भेद

लोकशाही सरकार, लोकसेवक होती है और सेवक, स्वामी के आदेश के अनुसार ही उसकी सेवा कर सकता है। सेवक—नेतृत्व नहीं कर सकता जो सुधारक या गुरु कर सकते हैं। अस्पताल में कोई बीमार आये तो उसको दवा देना, उसकी शुश्रूषा करना डॉक्टर का काम होगा, उपदेश पर व्याख्यान देना उसका काम नहीं होगा। सेवक की यह मर्यादा है। आज सरकार कहती है कि हम 1951 के बाद बाहर से अनाज नहीं मंगायेंगे। यह निश्चय अच्छा है, और मैं तो मानता हूं कि यह इससे बहुत पहले हो जाना चाहिए था। लेकिन फर्ज कीजिए कि लोग अगर कहेंगे कि ''नहीं हमको चावल ही खाना है, हम आलू-बालू नहीं खायेंगे, और इसलिए चावल आपको बाहर से मंगाना ही पड़ेगा, यह हमारा आदेश है। अगर आप इसे नहीं करना चाहते हैं, तो अपने स्थान से उतर जाइये। हम दूसरों को सरकार में भेजेंगे, और उनसे यह काम करायेंगे।'' तो लोगों की उस आज्ञा का पालन, सरकार को करना ही होगा। वह बात अच्छी तो नहीं होगी, लेकिन सरकार इससे आगे नहीं जा सकेगी। लेकिन हम जो सुधारक हैं; आगे जा सकते हैं। हम लोगों को समझा सकते हैं। लोगों की मर्जी का विरोध करके भी उनको मार्गदर्शन कराना, और सही चीज उनसे मनवाना हमारा काम है। हमारा कहना हम जनता-पर लादेंगे तो नहीं, लेकिन बार-बार समझाने का और मनवाने का सत्याग्रह हम जरूर करेंगे।

हमारी असीम शक्ति

लोग समझते हैं कि सत्याग्रह यानी केवल धरना देना। लेकिन यह खयाल गलत है। सम्यक आचरण से, सम्यक वाणी से और सम्यक विचार से लोगों के दिलों और दिमागों को समझाना, यही सत्याग्रह है। विचार-शक्ति पर जिसका विश्वास नहीं है, वह सत्याग्रही नहीं। सत्य-रूप प्रकाश के सामने, असत्य का तिमिर टिक नहीं सकता। यह है सत्याग्रही की शक्ति! जनता के असत् आदेश को हम नहीं मानेंगे। हमें जो सही लगता है, उसी पर हम चलेंगे। और जनता को वही करने के लिए समझायेंगे। सतत और धीरज के साथ समझाते रहेंगे और तीव्र विरोध करना पड़े तो वह भी करेंगे। यह सारा क्षेत्र सरकार को खुला नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं कि हम लोगों की शक्ति असीम है, और अगर किसी को लगता है कि शक्ति का खजाना सरकार के पास है तो वह भ्रम में है।

तिलक-पुण्यतिथि के निमित्त ये कुछ विचार मैंने आपके सामने रखे हैं। उनपर आप सोचियेगा। ❑

'सर्वोदय जगत'
के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों से अनुरोध है कि अपने महत्त्वपूर्ण आलेख, रचनाएं, विचार एवं सुझाव पत्रिका के लिए भेजें। –सं.

भूमि का सवाल

❑ आचार्य राममूर्ति

आज कौन भूमि-समस्या का नाम लेता है? राजनैतिक दलों ने हाथ खींच लिया है। सरकार ने हार मान ली है। सर्वोदय का नाम लेने वाली सेवा-संस्थाओं ने भी सरकारी योजनाओं से दरिद्रनारायण की सेवा से ही संतोष कर लिया है। हमारे देश की भूमि-समस्या एक धधकती प्रचण्ड आग है, आग में हाथ कौन डाले?

आजादी के पहले कांग्रेस में यह सोच बन गयी थी कि जमींदारी को खत्म करना भूमि-समस्या के समधान की दिशा में पहला कदम है। इसलिए आजादी मिलने पर कांग्रेस-सरकारों ने जमींदारी को समाप्त किया। उसके बाद सीलिंग के तथा काश्तकार के हक में कई कानून बने। बिहार ने तो भूमि पर लेवी लगाने तक का कानून बना डाला। भूमिहीनों को जमीन मिलनी चाहिए, यह हरएक मानता है, हमेशा से मानता आया है। भूदान-ग्रामदान के जमाने में हम सर्वोदय के लोग यहां तक मानने लगे थे कि जब तक भूमि समस्या हल नहीं की जायेगी तब तक भारत के पुनर्निर्माण का पहला अक्षर भी नहीं लिखा जा सकेगा।

लेकिन ये बातें बीते दिनों की हैं। परिस्थिति बहुत बदल गयी है। लगता है जैसे लोग मानने लगे हैं कि भूमि का प्रश्न हल हो या न हो भारत की प्रगति का विशाल रथ अबाध गति से 21वीं शताब्दी की ओर बढ़ता जायेगा। *आज कौन भूमि-समस्या का नाम लेता है? राजनैतिक दलों ने हाथ खींच लिया है। सरकार ने हार मान ली है। सर्वोदय का नाम लेने वाली सेवा-संस्थाओं ने भी सरकारी योजनाओं से दरिद्रनारायण की सेवा से ही संतोष कर लिया है। हमारे देश की भूमि-समस्या एक धधकती प्रचण्ड आग है, आग में हाथ कौन डाले?*

भूमि-समस्या के आयाम बदलते जा रहे हैं। कभी भूमि भूमिहीन की समस्या थी, अब भूमि अपने में समस्या बन गयी है। जमीन का एक टुकड़ा किसी को मिल भी जाये तो वह उसे लेकर क्या करेगा? किसका गुजर होगा एक-दो टुकड़ों से? स्थिति तो यहां तक पहुंची है कि भूमिहीन मजदूर के लिए खेती में भविष्य नहीं रह गया है। मजदूर के मिजाज और मजदूरी का बोझ खेती नहीं उठा सकती। उसका और छोटे किसान का गुजर खेती से नहीं हो सकता। और, जो जमीन वाले हैं वे भी बंटवारे या बिक्री के कारण क्रमशः भूमिहीनता की ओर जा रहे हैं। आज भूमि के स्वामित्व में विषमता है तो कुछ लोगों का पेट भर रहा है, लेकिन अगर किसी गांव की कुल भूमि ग्रामवासियों में बराबर-बराबर बांट दी जाये तो सब भूखों मरने लगेंगे। यों भी पूरी खेती घाटे का सौदा बन चुकी है।

लेकिन भूमि उत्पादन और जीवन का बुनियादी साधन है। उसकी उपज से पेट भरता है और कच्चे माल से उद्योग चलते हैं। इसलिए प्रश्न समाज के हित में भूमि के सही उपयोग का है, केवल बांट देने का नहीं। यह केन्द्र-बिन्दु है। इसे बीच में रखकर भूमि-स्वामित्व का स्वरूप तथा खेती की पद्धति तय करनी चाहिए। भूमि के जो कानून प्रचलित हैं वे पुराने पड़ गये हैं। उनसे नयी परिस्थिति की मांग नहीं पूरी होती। कानून से मुकदमेबाजी होती है, न्याय नहीं होता।

गांव की इकाई मानकर निर्माण की योजना बनानी हो—दूसरा आधार क्या होगा? तो गांव के लिए 'ऐग्रो इण्डस्ट्रियल इकॉनमी' के सिवाय दूसरी कोई चीज सोची नहीं जा सकती जिसमें खेती, पशुपालन और उद्योग जीविका के मुख्य साधन होगे। एक परिवार के लिए एक साधन होगा; पूरक साधन दूसरे हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में एक ही गांव में पारिवारिक, सहकारी और सामूहिक खेती की तीनों पद्धतियां हो सकती हैं। पद्धति चाहे जो हो मजदूर-खेती के दिन जा रहे हैं, भविष्य श्रम-सहकार का है।

खेती खेतिहर के पास रहनी चाहिए, गैरहाजिर या गैर-खेतिहर मालिक के पास नहीं। यह बात बुनियादी है जो अब तक मान्य नहीं हुई है। अगर यह बात मान ली जाये तो कानूनी स्वामित्व गांव के सिवाय दूसरे किसी का हो नहीं सकता। खेतिहर के पास खेत खेती के लिए रहेगा, किराया कमाने के लिए नहीं। इसलिए सबसे पहले भूमि की मुक्ति होनी चाहिए—गैर-खेतिहर मालिक से और सरकार से अंधे कानून से।

नयी समाज-रचना की बात सोचने वालों को फिर सोचना चाहिए कि क्या नयी भूमि व्यवस्था के बिना कोई नया ग्राम-परिवार बन सकता है जिसे वे नयी समाज-रचना का आधार मानते हैं? भूमि का प्रश्न तब तक बुनियादी बना रहेगा जब तक वह हल नहीं हो जाता। उसे छोड़कर आगे बढ़ना असंभव नहीं दिखायी देता क्योंकि उसी से गांव का जीवन चलता है और उसी पर ग्रामीण समाज के संबंध विकसित हुए हैं।

गांव का दरिद्रीकरण

25 बीघे अच्छी उपजाऊ जमीन, और 6 वर्षों से 22 हजार का घाटा। विश्वास करने लायक बात नहीं है, फिर भी विश्वास करना पड़ा जब उस दिन छपरा के एक किसान भाई ने अपनी खेती का हाल बताते हुए कहा, ''अब मैंने सोचा है कि दो-ढाई बीघे अपने पास रखकर बाकी सब जमीन बंटाई पर लगा दूंगा। कब तक घाटा सहता रहूंगा?'' उनके इस निर्णय से गांव के बंटाईदार खुश हो जायेंगे। उन्हें जमीन चाहिए, जमीन मिल जायेगी। मालिक खुश रहेगा, क्योंकि वह पूंजी लगाने और घाटा सहने, दोनों से बच जायेगा। अभी तक जो घाटा उसे उठाना पड़ता था वह बंटाईदार के मत्थे चला जायेगा। घाटा एक कंधे से उठकर दूसरे के कंधे पर ट्रांसफर हो जायेगा। लेकिन बंटाईदार घाटे को घाटा नहीं समझेगा। उसे यह संतोष होगा कि अब उसे दूसरे की जमीन

पर मजदूरी नहीं करनी पड़ेगी, 'अपनी' जमीन होगी जिस पर वह और उसकी पत्नी काम करेंगे। वह उपज का आधा हिस्सा बांटकर बंटाईदार को दे देगा, फिर भी मालिक का उपकार मानेगा कि उसने जमीन दी, बेरोजगारी में सहारा मिला। वह घाटे-मुनाफे का हिसाब नहीं जोड़ेगा, आधा देने के बाद अन्न और भूसा जो भी बच जायेगा उसे कमाई समझेगा, और कानून की बात भी नहीं सोचेगा जिसके अनुसार उसे 30 हिस्सा और मालिक को 10 हिस्सा मिलना चाहिए, क्योंकि अगर वह कानून का प्रश्न उठायेगा तो कानून उसे 30 हिस्सा दिला नहीं सकता, और मालिक जमीन वापस ले लेगा, तो उसका यह सहारा भी छिन जायेगा।

बंटाई की खेती से जो घाटा खेती का होगा उसे कौन जोड़ता है? बंटाईदार खेत में पूंजी नहीं लगायेगा क्योंकि उसे भरोसा तो है नहीं कि खेत कितने दिन उसके पास रहेगा। खेती भगवान भरोसे होगी। खेती की शक्ति घटेगी, खेती से उपज घटेगी। राष्ट्र की क्षति होगी क्योंकि राष्ट्र खेतिहर की प्रतिभा, श्रम-शक्ति, खेत की उर्वरा-शक्ति, उचित उपज, सबसे वंचित होगा। कोई कह सकता है कि मालिक ने अपनी जमीन बंटाई पर देकर शोषण किया, जबकि उसकी नीयत शोषण करने की नहीं थी, वह सिर्फ घाटे से बचना चाहता था और बंटाई की पद्धति में उसे एक रास्ता मिल गया। अगर उपज का उचित मूल्य मिलता और उसे घाटा न होता तो वह खेती न छोड़ता। खेती की यह व्यवस्था ही ऐसी है कि इसमें बड़ा नुकसान स्वयं खेती का है। हमारा खेतिहर देश है, 70 प्रतिशत लोग खेती पर जीवित हैं, और खेती के विकास की बड़ी-बड़ी बाते होती हैं, तब खेती का यह हाल है! उपज का उचित मूल्य ही वह कुंजी है जिससे विकास का ताला खुल सकता है क्योंकि उसके बिना न खेती अच्छी होगी, न किसान का पुरुषार्थ जगेगा, न मजदूर को उचित मजदूरी मिलेगी, और न कारीगर को काम मिलेगा। ❑

बातचीत

मूल्यों में परिवर्तन से क्रांति आती है : महादेव विद्रोही

सर्व सेवा संघ एक ऐसा संगठन है, जिसकी कल्पना महात्मा गांधी ने की थी और जिसे साकार किया था आचार्य विनोबा भावे ने। सर्वोदय आंदोलन इसी संगठन की उपज था। आज इस संगठन के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं महादेव विद्रोही। वर्तमान में क्या है इस संगठन की कार्यशैली और क्या ये आज गांधीजी की विरासत को आगे बढ़ा रहा है, इस मुद्दे पर महादेव विद्रोही से बात की चौथी दुनिया के वरिष्ठ संवाददाता ***शशि शेखर*** *ने। प्रस्तुत है बातचीत के प्रमुख अंश साभार...।* **–संपा.**

आ*प लंबे समय से इस संगठन से जुड़े रहे हैं। अभी आप राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं। तब और अब के बीच सर्व सेवा संघ में आप क्या अंतर देखते हैं?*

सबसे बड़ा अंतर तो यही है कि पहले इस संगठन के पास विनोबा भावे और लोकनायक जयप्रकाश जी जैसा बड़ा नेतृत्व था। उनके जाने के बाद अब मुझे लगता है कि सर्व सेवा संघ का राष्ट्रीय महत्त्व कम हुआ है। उनके बाद की भी एक पीढ़ी थी, दादा धर्माधिकारी की, धीरेन्द्र मजूमदार की। वे भी हमारे बीच नहीं रहे। हम तीसरी पीढ़ी के लोग हैं, जिनके भरोसे ये आंदोलन चल रहा है। ये सही बात है कि हमारी राष्ट्रीय छवि अभी नहीं है। लेकिन सर्वोदय आंदोलन भूदान से जुड़ा रहा है और देश के अधिकांश भागों में भूदान की जमीनें मिली हैं। जिन लोगों को भूदान की जमीनें मिली हुई हैं, वे

सब आज भी सर्वोदय को नाम से जानते हैं। इसलिए अभी भी गांव-गांव में सर्वोदय को याद करने वाले लोग हैं। भले ही अखबारों में हमारा नाम कम आता हो, लेकिन गांवों में अब भी हमारा गुडिविल है और अब भी सर्व सेवा संघ में लोगों की बहुत आस्था है।

आपने कहा कि मौजूदा समय में आपकी राष्ट्रीय पहचान नहीं है। क्या कारण है कि वर्तमान समय में लोग आपकी विचारधारा के साथ नहीं जुड़ रहे हैं और इसके लिए आप किसे जिम्मेदार मानते हैं?

हमारे संगठन का सदस्य बनने के लिए जरूरी शर्त है कि आपकी सत्य और अहिंसा में पूरी आस्था हो और आप किसी भी राजनीतिक दल से नहीं जुड़े हों। साथ ही आप किसी भी तरह का कोई पद धारण नहीं करेंगे, चाहे वो ग्रामसभा के प्रधान का पद ही क्यों न हो। पिछले कुछ समय में सत्ता का आकर्षण बहुत बढ़ा है। अभी जब ग्राम पंचायतों के पास बहुत से कोष आने लगे, तो कई लोग सोचने लगे कि कम से कम पंचायत का प्रधान तो मैं बन ही जाऊं। हमारे यहां इन सबकी पाबंदी है। कई लोगों को लगता है कि यहां आना अपना विकास रोकने जैसा है। सर्व सेवा संघ की स्थापना से पहले गांधीजी ने इसके लिए तैयार किये गये दस्तावेज में लिखा था कि भारत के सात लाख गांवों में मुझे सात लाख जिन्दा शहीद चाहिए। ऐसे कार्यकर्ता को समाज की कुरीतियों से लड़ना होता है। इसलिए ये आसान काम नहीं है। इस काम में कोई ग्लैमर नहीं है, इसलिए आम लोग इससे प्रभावित नहीं हो पाते हैं। भूदान कार्यक्रम का एक आर्थिक पक्ष था, इसलिए भी लोग उससे प्रभावित हुए। जो लोग विचारों की गहराई में जाते हैं, वे हमसे जुड़ते हैं।

आजादी की लड़ाई के साथ-साथ गांधीजी वैचारिक और सामाजिक सुधारों की भी एक लड़ाई लड़ते थे। उससे जुड़ने वाले लोगों के लिए उन्होंने ऐसी कोई पाबंदी नहीं रखी कि वे राजनीति नहीं कर सकते। क्या ये पाबंदी भी एक वजह है, लोगों के सर्व सेवा संघ के साथ नहीं जुड़ने का?

गांधीजी ने अपना अंतिम वसीयतनामा 29 जनवरी 1948 को लिखा। उसमें उन्होंने लिखा कि देश को आजादी मिलने के साथ ही अब कांग्रेस का काम खत्म हो गया है। कांग्रेस आजादी के लिए बना हुआ संगठन था। देश आजाद हो गया, अब उसका काम खत्म हो गया। इसको अब **लोकसेवक संघ** के रूप में बनाना चाहिए। यानी कांग्रेस एक राजनीतिक दल था। इसलिए राजनीतिक दल में सबको आने की छूट थी। लेकिन गांधीजी ने खुद कहा था कि अब उसका काम खत्म हो गया और उसको **लोकसेवक संघ** में विकसित करना चाहिए। हम भी उसी विचारधारा को आगे बढ़ा रहे हैं।

आपके अनुसार भूदान एक आर्थिक कार्यक्रम था, जिससे लोग जुड़े। मौजूदा समय में क्या आपके पास इस तरह का कोई कार्यक्रम है, जो जनसाधारण को अपने साथ जोड़ सके?

भूदान की तरह आज भी हमने भूमि से जुड़े सवालों को अपने हाथ में लिया है। नई आर्थिक नीति के बाद और खासकर पिछले चार-पांच वर्षों में सरकार छोटे किसानों और आदिवासी क्षेत्रों की जमीनें अधिग्रहीत कर रही है। पहले तो सरकार सार्वजनिक कामों के लिए जमीन अधिग्रही करती थी, लेकिन अब कंपनियों के लिए सरकार ने जमीन अधिग्रहीत करना शुरू कर दिया है। एक बार जमीन छिन जाती है, तो फिर वो लौटकर नहीं आती, लोगों के पास पैसे तो आ जाते हैं, लेकिन बहुत कम लोग हैं जो दोबारा जमीन खरीदते हैं। जब तक पैसे रहते हैं, मौज करते हैं। एक जमाने में जो लोग जमींदार थे, उनमें से अनेक लोग आज झोपड़पट्टियों में रहते हैं। जब तक पैसे थे गाड़ियां खरीदी, मौज किये। सरकार से हमारा कहना है कि लोगों की जमीनें न छीनी जायें। आर्थिक संसाधनों पर जनता का अधिकार रहना चाहिए। एक दूसरा मुद्दा है, पानी का। इसका भी व्यापारीकरण हो रहा है। इन दोनों मुद्दों को केन्द्र में रखकर हम लोग आगे बढ़ रहे हैं। हमारा मानना है कि प्राकृतिक संसाधन पर जनता का अधिकार होना चाहिए। विकास के नाम पर जनता को संसाधनों से बेदखल नहीं किया जाना चाहिए। इस मुद्दे पर जनता हमारे साथ है। गुजरात में हमारा एक आंदोलन चल रहा है। शहरों की कंपनियों से निकलने वाले वेस्ट केमिकल को गांवों में डम्पिंग साइट बनाकर उसमें डाल दिया जाता है। उस वेस्ट केमिकल से ग्राउंट वाटर प्रदूषित हो जाता है। इससे गांवों में अनेक तरह की बीमारियां फैलती हैं। इसके कारण ही अहमदाबाद के बटवा में इंड्रस्ट्रियल एरिया के आसपास के गांवों में लोग चर्म रोग से प्रभावित हैं। वहां का पूरा ग्राउंड वाटर रंगीन हो गया है। शुरू में जब वहां कंपनियां स्थापित हुईं, तब लोग बहुत खुश थे कि उन्हें रोजगार मिलेगा। लेकिन अब उन्हें इसका अहसास हो रहा है कि ये अभिशाप बन गया है।

गुजरात में लगभग 60 हजार एकड़ भूदान की जमीन अभी तक वितरित नहीं हो सकी है। बिहार में भी भूदान की जमीन है। जमीन सही लोगों तक पहुंचे, इसमें सर्व सेवा संघ की क्या भूमिका रहेगी?

एक लाख तीन हजार एकड़ जमीन हमें गुजरात में मिली थी। उसमें से 52 हजार एकड़ बांटी गयी। अभी भी 53 हजार एकड़ जमीन बची हुई है। इसके लिए हमारे ही कुछ लोग जिम्मेदार हैं, जो आंदोलन से जुड़े हुए थे। इसका एक और कारण है। विनोबाजी के समय में जब सभी राज्यों में भूदान एक्ट बना, जिसका ड्राफ्ट हमारे संगठन ने ही

तैयार किया था, तब उस समय गुजरात नहीं था। उस समय बाम्बे राज्य था। बाम्बे राज्य में भूदान एक्ट नहीं बना। बाम्बे राज्य के नाम से एक नोटिफिकेशन निकाला था। वही नोटिफिकेशन आज तक गुजरात और महाराष्ट्र में चल रहा है। इसे कुछ लोगों ने हाईकोर्ट में चैलेंज किया था कि ये नोटिफिकेशन एक्ट नहीं है, अधिनियम नहीं। भूदान में ये नियम है कि भूदान की जमीन बिक नहीं सकती है। अहमदाबाद में एक बड़े वकील ने भूदान की जमीन खरीदी जिसका सत्ता पक्ष से संबंध है। उन्होंने कोर्ट में कहा कि कोई कानून नहीं है, जिसके द्वारा आप हमें जमीन खरीदने से रोक सकें। लेकिन हाईकोर्ट ने इसके खिलाफ फैसला दिया और कहा कि भूदान की जमीन गरीबों के लिए है, बेचने-खरीदने के लिए नहीं। एक तो इसे लेकर कानूनी ढिलाई रही और दूसरा ये कि जमीनें कई संस्थाओं के पास चली गयीं। भूदान की जमीन भूमिहीन लोगों को मिलनी चाहिए। कुछ साल पहले बिहार सरकार ने लैंड रिफॉर्म कमीशन बनाया था। जिसकी अंतरिम रिपोर्ट में डी बंद्योपाध्याय ने लिखा कि 11,500 एकड़ भूदान की जमीन 59 संस्थाओं को दी गयी है। ये सभी गांधी के नाम पर चलने वाली संस्थाएं हैं। विनोबा भावेजी ने जो जमीन गरीबों के लिए मांगी थी, वो संस्थाओं ने ले ली। वो या तो सर्वोदय की संस्था हो या कोई और सरकारी संस्था। यदि इसके कारण जनता का विश्वास आपके ऊपर से घटता है या आपके प्रति गुस्सा बढ़ता है, तो वो गलत नहीं है। इसके लिए मैं व्यक्तिगत तौर पर लड़ रहा हूं। मैंने गुजरात में इस मुद्दे को उजागर किया। वहां के अखबारों ने भी इसे प्रमुखता से उठाया। शासन को भी नहीं मालूम था कि क्या करना है। सुप्रीम कोर्ट ने अपने जजमेंट में कहा है कि भूदान की जमीन लैंडलेस एग्रीकल्चर के लिए है। ये फैसला 1988 में आया था। प्रावधान ये है कि जमीन नहीं बिकनी चाहिए, जबकि जमीन बिक रही थी। आरटीआई के जरिये जब रेवेन्यू डिपार्टमेंट से पूछा, तो कहा गया कि लॉ डिपार्टमेंट से पूछो। इस तरह से टाल-मटोल किया जाता रहा। हम उन लोगों को संगठित करने की कोशिश कर रहे हैं, जिनकी जमीनें छिन गयी हैं। हाल ही में अहमदाबाद के साइंस सिटी में भूदान की 11 एकड़ जमीन एक करोड़ दस लाख में बेची गयी। गौर करने वाली बात है कि उनमें से एक एकड़ जमीन की कीमत सात करोड़ है। गुजरात के सौराष्ट्र में भूदान की जमीन बड़े-बड़े राजनीतिक लोगों के पास है और वे नहीं चाहते हैं कि इसे भूमिहीनों में वितरित किया जाय।

ये सुनने में बहुत अच्छा लगता है कि सर्व सेवा संघ का उद्देश्य है, सत्य, अहिंसा और शोषण से मुक्त समाज की स्थापना करना, लेकिन मौजूदा सामाजिक और राजनीतिक दौर में ये कैसे संभव हो पायेगा?

ये एक दीर्घकालीन लक्ष्य है, साथ ही एक कठिन काम भी है। अब तक जो भी क्रांति हुई, चाहे वो कम्युनिस्टों की क्रांति हो, फ्रांस की क्रांति हो या कोई और क्रांति, सभी का एक ही लक्ष्य था, शोषण से मुक्ति और अन्याय से मुक्ति। वो लक्ष्य पूरा हुआ या नहीं, ये अलग सवाल है। आमतौर पर लोग सत्ता में परिवर्तन को क्रांति मानते हैं। लेकिन सर्वोदय में हम मानते हैं कि मूल्यों और संबंधों में परिवर्तन से क्रांति होती है। व्यक्ति का बदलना क्रांति नहीं है, व्यवस्था का बदलना क्रांति होता है। यदि वही व्यवस्था रही, सिर्फ लोग बदल गये, तो ये क्रांति नहीं हुई। हमारे लक्ष्य में कठिनाइयां जरूर हैं, लेकिन उस लक्ष्य को पाये बिना हमारा उद्देश्य सिर्फ उद्देश्य रह जायेगा।

सर्व सेवा संघ नये लोगों को, खासकर युवाओं को अपने साथ जोड़ने के लिए क्या कोई कार्यक्रम लेकर आयेगा?

जब मैं अध्यक्ष बना, तो सर्व सेवा संघ का सबसे कम उम्र का अध्यक्ष था। अब तक अध्यक्ष और कार्यकर्ताओं के बीच में बहुत दूरी हुआ करती थी। लेकिन अब हमारे कार्यकर्ताओं को लगता है कि आज उनका एक साथी अध्यक्ष है। उनके साथ साथी की हैसियत से मेरी बातचीत होती है। इससे मुझे प्रसन्नता होती है। मैं चाहता हूं कि आगे का नेतृत्व उनके हाथ में आये और जो भी निर्णय होते हैं, उसमें उनकी भी भागीदारी हो। जिससे उन्हें लग सके कि ये उनका संगठन है। सरकार में कुछ खास लोगों के पास ही सब कुछ केन्द्रित होता है, लेकिन हमारे संगठन में ऐसा नहीं है। सर्वोदय लोगों का संगठन है, समाज का संगठन है। युवा कार्यकर्ताओं को शोषण से लड़ने में मजा आता है। मैनेजमेंट के स्टुडेंट, टेक्नोलॉजी के स्टुडेंट बड़े पैमाने पर गांधीजी के विचारों से आकर्षित होते हैं। वे संगठन के सदस्य नहीं हैं, लेकिन अपने-अपने तरह से काम कर रहे हैं। ❑

क्रांति के लिए तीन बातें आवश्यक

जीवन की परीक्षा के निकष या पैमाने बिलकुल सही होने चाहिए। सामाजिक प्रतिष्ठाओं को ही मूल्य कहते हैं। इन सामाजिक मूल्यों का परिवर्तन ही सामाजिक क्रांति है। सिर्फ बाहर से समाज को बदल देने का नाम क्रांति नहीं है। पहाड़ की जगह तालाब तो भूकम्प से भी हो सकता है। लेकिन वह क्रांति नहीं है। क्रांति के लिए तीन बातों की आवश्यकता है :

1. उद्देश्य, 2. उस उद्देश्य के अनुरूप साधन, 3. उस साधन पर मानव का पौरुष।

विशिष्ट उद्देश्य से, विशिष्ट साधनों द्वारा मानव के पुरुषार्थ से समाज-परिवर्तन ही क्रांति है। रास्ता साफ है, लेकिन कदमों में चलने की ताकत नहीं है, तो रास्ते से कोई फायदा नहीं। समाज के बाजार-भाव को बदल देना ही क्रांति है।

–दादा धर्माधिकारी

भारतीयता का भविष्य

❑ सच्चिदानन्द सिन्हा

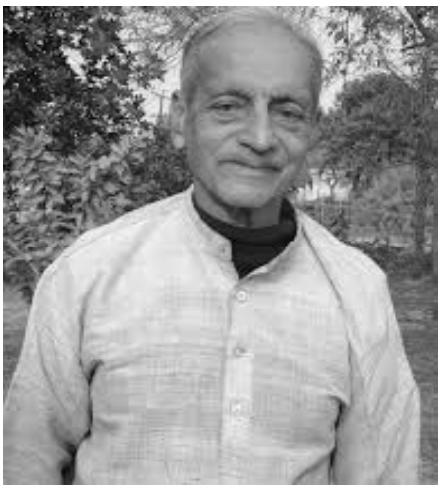

इकबाल के मशहूर गीत 'सारे जहां से अच्छा...' में जो एक समय देश भर में सभी की जबान पर था, इस बात की याद दिलायी गयी है कि यूनान, मिस्र और रोम दुनिया से मिट गये, पर हमारे यहां कुछ ऐसा रहा है जिससे हमारी हस्ती नहीं मिटती। वही 'कुछ' भारतीयता है, और अगर हम इसी 'कुछ' का अर्थ निकाल पाये और उसकी मौजूदा स्थिति का लेखा-जोखा कर पाये तो यह भी जान लेंगे कि भारतीयता का भविष्य क्या है।

इसमें संदेह नहीं कि मिस्र की उपलब्धियां सिंचाई व्यवस्था तथा स्थापत्य में अद्वितीय थीं। ईसा के तीन हजार वर्ष पूर्व मिस्र ने स्थापत्य, शौर्य और श्रृंगार के जो प्रतिमान स्थापित किये थे, वे आज भी आश्चर्य में डालने वाले हैं। इसी तरह यूनान ने मूर्तिकला और चित्रकला में ऐसी ऊंचाई हासिल की, जहां पहुंचना आज भी कलाकारों को दुर्गम लगता है; यूनान की सभ्यता और संस्कृति रेनासां (यूरोपीय पुनर्जागरण काल) से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में यूरोपीय कला के लिए प्रेरणा का स्रोत रही है। इतना ही नहीं, विज्ञान, गणित, दर्शन, राजनीति शास्त्र, इतिहास लेखन आदि की नींव इस सभ्यता ने डाली लेकिन जिस कारण सुदूर एशिया और अफ्रीका तक यूनानी अथवा हेलेनिक सभ्यता का प्रभाव फैला, वह थी सिंकदर की बहादुरी तथा सैनिक दक्षता। सिकंदर ने अल्पकाल में ही मिस्र और रोम के विशाल साम्राज्यों को रौंद डाला और भारत तक आ गया। रोम की उपलब्धि अलग किस्म की थी। और वह अपने ढंग की अनोखी थी। अपने समय के हिसाब से नगर-निर्माण योजना, जल निकासी की योजना, सड़क-निर्माण तथा भव्य एंफीथियेटरों का निर्माण कर रोमनों ने अपूर्व इंजीनियरी दक्षता का परिचय दिया। पर सबसे बढ़कर थी उनकी फौज 'लेजनों' की संगठित और अनुशासित शक्ति, जिसके सामने लगभग पांच सौ वर्ष तक कोई भी शक्ति टिक नहीं सकी। एक अपवाद हानिबाल का जरूर था। लेकिन अंततोगत्वा अपनी रणनीति से रोमनों ने उसे भी परास्त किया। इनके अलावा जिस चीज की अमिट छाप उन्होंने यूरोपीय सभ्यता पर और यूरोपीय साम्राज्य के माध्यम से दुनिया भर पर छोड़ी, वह थी उनकी कानून व्यवस्था जो यूरोप के सभी परवर्ती कानूनों का आधार रही है।

लेकिन मिस्र, यूनान और रोम तीनों में ही उनकी प्राचीन सभ्यताओं की निरंतरता कायम नहीं रह पायी। मिस्र पहले हेलेनिक (यूनानी) बना, फिर रोमन और बाद में अरब इस्लामी और यूरोपीय सभ्यता के रंग में रंग गया। यही हाल यूनान का भी हुआ, जो अब पश्चिमी यूरोप की नयी संस्कृति की जूठन पर और उसकी मदद से जी रहा है। रोम भी आधुनिक पश्चिमी सभ्यता का एक पिछड़ा हुआ हिस्सा बन कर रह गया। उसका जो भी अपना और महान था, वह अब पुरातत्त्ववेत्ताओं और इतिहासकारों की विवेचना का विषय भर बन कर रह गया है। प्राचीन सभ्यताओं वाले देशों में भारत ही अकेला है, जिसके जीवन पर आज भी उसकी पुरानी संस्कृति की छाप मौजूद है। शायद आज भी भारत के गांवों में दो हजार वर्ष पूर्व वर्णित जीवन पद्धति के कुछ जीवित रूप दिख जायेंगे। आज भी भारतीय मनीषा के गहरे तल में उसके प्राचीन संस्कार किसी न किसी रूप में बैठे हैं। इस तरह भारत में एक सांस्कृतिक निरंतरता बनी रही है, जिससे उसका प्राचीन अस्तित्व-बोध आज भी कायम है।

इस निरंतरता के दो कारण रहे हैं। एक तो भारत में अनेक मानव समुदायों के विशेष तरह के पारस्परिक संबंध और दूसरा उन आदर्शों का चुनाव, जो भारतीय जीवन को संचालित करते रहे हैं। पहले कारण में विभिन्न कबायली समूहों के आपसी संबंध शामिल हैं। भारत में यह संबंध यूरोप तथा दुनिया के अन्य कई भागों से भिन्न था। यूरोप में जब एक कबायली समूह एक जगह से दूसरी जगह गया तो उसने वहां के प्राचीन वाशिंदों को या तो वहां से भगा दिया या खत्म कर दिया। इसके विपरीत भारत में हजारों बरस से विभिन्न कबायली समूह आते रहे और पुराने कबीलों के साथ अकसर एक खास तरह की जातीय व्यवस्था कायम कर बस गये। इस क्रम में कोल, द्रविड़, आर्य, शक, हूण, पठान, तुर्क, अरब, सिथियन आदि अनेक प्रजातियों के कबीले भारत आये और भारत की जीवन धारा में मिलकर विलीन हो गये। इससे एक-दूसरे के रीति-रिवाजों, पूजा-पाठ, देवी-देवताओं आदि को बरदाश्त करने और समझने की परम्परा बनी। यही वह सामाजिक आधार है जिस पर भारतीय विश्वासों की पारस्परिक सहिष्णुता कायम हुई है। आगे चलकर इससे वह परम्परा बनी, जिसमें धार्मिक मतभेदों को खत्म करने के लिए तलवार के बजाय विवादों और शास्त्रार्थों का सहारा लिया जाने लगा। भारतीयता का यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसी सहन करने और जज्ब करने की शक्ति से भारत, भारत बना रहा और हर नये मानव समूह के आने पर रंग बदल कर वैसा नहीं बन गया, जैसे मिस्र या रोम बन गये।

भारत की अस्मिता बनाये रखने में दूसरी महत्त्वपूर्ण चीज थी, जीवन के आदर्शों का चुनाव। भारतीय आदर्शों में बाहरी वस्तुओं के बजाय आंतरिक उपलब्धियों पर अधिक जोर दिया गया। इससे भारत के दर्शन और धर्म में संतोष, आत्म नियंत्रण, निःस्वार्थ सेवा, अपरिग्रह आदि केन्द्रीय मूल्य बन गये। परोपकार को तो सभी धर्मों का सार ही मान लिया गया था। इस तरह के विचार उपनिषदों, पुराणों तथा बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मों में प्रधान हैं। कालान्तर में इस्लाम के आने के बाद इस्लाम का भारतीयकरण हुआ और भारतीय धर्मों तथा इस्लाम के पारस्परिक प्रभाव से और उनके आपसी विभेदों को मिटाती हुई संत कवियों की एक परम्परा चली तो उसमें भी इन्हीं तत्त्वों को प्रधानता मिली। उदाहरण के लिए सूफी संत फरीद (13वीं सदी) की इन पंक्तियों में इसी भावना की अभिव्यक्ति होती है।

'रुक्खी-सुक्खी खाय के ठंढा पानी पीव।
फरीदा देखि परायी चोपड़ी न तरसावे जीव।'

या

'फरीदा काले मैड़े कापड़े, काला मैला वेसु।
गुनही भरिया मैं फिरा, लोकु कहै दरवेसु।'

इसी तरह दूसरे सूफी संत दाता गंजबक्श (11वीं सदी) कहते हैं—ए मुरीदों! त्याग और परोपकार ही फकीरी की कुंजी है। दूसरों के सुख पहुंचाने के लिए कष्ट उठाना और दूसरों के लाभ के लिए अपने नुकसान की ओर ध्यान न देना चाहिए, स्वार्थ को त्याग देना ही धर्म है।

किसी देश के वास्तविक चरित्र और उसकी प्रेरक शक्ति की अभिव्यक्ति उसके आदर्श पुरुषों (कल्चर हीरो) के चुनाव में होती है। मिस्र की महानता उसके पुरोहित सम्राटों (फारुआह) की उपलब्धियों में देखी जाती है। यूनान की ख्याति सिकंदर महान की उपलब्धियों में देखी जाती है। रोम की गरिमा की परिणति जूलियस सीजर के विजय अभियानों में होती है। इन सबकी उपलब्धियां युद्ध-क्षेत्र में विजय या संपदा को बढ़ाने में रही है। इन दोनों तरह की उपलब्धियां बाहरी स्थितियों पर निर्भर करती हैं और इसलिए अस्थाई हैं। देश की सैनिक शक्ति कमजोर पड़ सकती है और विजेता विजित और पराजित हो सकता है। कई पीढ़ियों से अर्जित सम्पत्ति एकाएक नष्ट हो सकती है और आज की स्थापत्य की महान उपलब्धियां कल की नुमाइश भर रह जा सकती हैं—जैसे मिस्र के पिरामिड या चीन की दीवार। इसलिए इन सभ्यताओं की गरिमा कुछ ही काल में पुच्छल तारे की तरह आयीं, पर एक बार शक्ति का पराभव हुआ तो उतनी ही जल्दी बिना कोई विरासत छोड़े विलीन भी हो गयीं, यूनान और रोम की सभ्यताओं में जो उदात्त तत्त्व थे, उनकी रक्षा या अभिव्यक्ति बाद में ईसाई धर्म के माध्यम से ही हो पायी।

भारत की स्थिति बिलकुल अलग थी। हमारा आदर्श पुरुष कोई योद्धा नहीं रहा। शिवि, दधीचि, बुद्ध और अशोक रहे। शिवि अैर दधीचि ने अपना मांस हाड़ देकर भी शरणागतों की रक्षा की और बुद्ध से संपूर्ण जीव जगत के प्रति दया का पाठ सिखाया। अशोक ने हथियारों का परित्याग कर प्रेम और अहिंसा के बल पर संसार का हृदय जीतने में अपना जीवन लगा दिया। अगर हम अपने धर्म शास्त्रों पर नजर डालें तो देवताओं का राजा इन्द्र एक कामुक, कपटी और कायर व्यक्ति के रूप में उभरता है, जो सदा अपने सिंहासन के लिए शंकित रहता है और असुरों के आक्रमण के भय से बार-बार विष्णु और शिव की शरण में जाता है। पुराणों को पढ़ने से जो एक स्पष्ट छाप मन पर पड़ती है, वह यह कि युद्ध की क्षमता मूलतः आसुरी है और देवता तथा मनुष्य इसमें बार-बार पराजित होते हैं। भारतीय मानस पर इन्द्र स्वर्गीय सुख की कामना और उन्माद के अवश्यम्भावी परिणामों के प्रतीक के रूप में चित्रित होता है। इसीलिए भारतीय धर्मों में स्वर्ग की प्राप्ति कभी सर्वोच्च लक्ष्य नहीं रहा, क्योंकि कामनाओं का दास इन्द्र और स्वर्ग, कामनाओं के अवांछित पर अनिवार्य फलों के भोगी बन जाते हैं। मोक्ष की भारतीय कल्पना सभी इच्छाओं से परे जाने की रही है। यही भारतीय चेतना का केन्द्र बिन्दु रहा है, चाहे हम इसे ईश्वरवादी परम्परा में देखें या बौद्ध धर्म जैसी अनीश्वरवादी परम्परा में।

जड़ वस्तुओं के प्रति यह दृष्टि हम भारतीय कलाओं में भी पाते हैं। सुप्रसिद्ध पश्चिमी कला दार्शनिक बोरिंगर ने कला-अभिव्यक्ति को दो ध्रुवों में बांटते हुए भारतीय कला को अनुकृति के विपरीत उस ध्रुव का विशिष्ट नमूना माना, जो सांसारिक कोलाहलों से दूर अमूर्तन की ओर जाता है। भारतीय कला में चाहे हम मूर्तिकला लें, भित्तिचित्र लें, या मिनियेचर (लघु चित्र), सभी में हम यही रुझान पाते हैं, प्राचीन मूर्तिकला और अजंता के भित्तिचित्रों में आदर्शों के चित्रण का यह रुझान तो दिखायी देता ही है, बाद की राजपूत, पहाड़ी और मुगल कला के मिनियेचर में भी हम यही पाते हैं। कोई भी व्यक्ति जो मुगलकालीन कलाकृतियों की तुलना इसी काल में पश्चिम के पोस्ट रेनैसां (उत्तर-पुनर्जागरण काल) के चित्रों से करेगा, दोनों के बीच स्तंभित करने वाले फर्क से प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सकेगा। जहां रेनैसां कला अभिव्यक्ति के तरह-तरह के 'कोड' (संकेत) इसलिए विकसित करती हैं, ताकि चित्रों को देखने का भ्रम पैदा हो। राजपूत और मुगल कला में रेखाओं और रंगों को सरलीकरण की ओर ले जाते हैं जहां रंग अपनी शुद्धता में दर्शकों पर एक स्वतंत्र स्थिति की अपनी छाप छोड़ सकें। यह भारतीय कला अभिव्यक्ति यहां के लोगों की संपूर्ण चेतना से जुड़ी हुई है।

जिस चेतना की अभिव्यक्ति दर्शन, धर्म और कला में हो, उसकी जीवन में नहीं हो, ऐसा हो नहीं सकता। हम इस चेतना की अभिव्यक्ति सामाजिक जीवन की बनावट और जीवन के प्रति आम लोगों की दृष्टि में भी देख सकते हैं, सामाजिक जीवन के गठन में इस दृष्टि का असर यह हुआ है कि भारत

मूलतः गांवों का देश रहा। जब लोगों की जरूरतें सीमित हों और उनमें नयी वस्तुओं को पाने की ललक नहीं हो तो व्यापार पर भी सीमा लग जाती है। जब व्यापार न्यूनतम हो और लोग अपनी जरूरत की चीजें स्थानीय रूप से पैदा करने लगें तो नगरों का विकास कठिन हो जाता है। ऐसा नहीं कि भारत में नगर हुए नहीं। पराक्रमी राजाओं की राजधानी में, महत्त्वपूर्ण धर्मस्थलों और विश्वविद्यालयों के इर्द-गिर्द नगरों का विकास हुआ। लेकिन इनका देश के जीवन पर वह महत्त्व कभी नहीं रहा, जो रोम, पेरिस या लंदन का अपने देशों में था। एक दिलचस्प बात यह है कि परम्परा के अनुसार भारत में भव्य नगर निर्माण भी दानवों और राक्षसों के साथ जुड़ा। रावण की सोने की लंका या स्वर्ग तक सीढ़ी लगाने की आकांक्षा तथा भय दानव द्वारा इन्द्रप्रस्थ का निर्माण, जिससे जल, स्थल और स्थल, जल का भय पैदा करते थे, दानवों की चमत्कारी बुद्धि के परिणाम माने जाते थे।

आवश्यकताओं के सीमित होने का एक और महत्त्वपूर्ण असर हुआ, हालांकि भारत में जाति-व्यवस्था के कारण एक खास तरह की विषमता रही और अस्पृश्यों के साथ तो सदियों से अमानुषिक व्यवहार होता रहा, लेकिन आर्थिक दृष्टि से वैसी विषमता कभी नहीं रही, जैसी हम पश्चिमी समाज में प्राचीन काल से पाते हैं और आधुनिक काल में उससे भी बढ़कर भारत में पाते हैं। व्यापार और आधुनिक उद्योगों के विकास से सम्पत्ति का अत्यधिक केन्द्रीकरण होता है और इससे आर्थिक विषमता भी बढ़ती है। मूलतः ग्रामीण संस्कृति होने के कारण हमारे यहां कोई राष्ट्रव्यापी केन्द्रित व्यवस्था नहीं बन पायी। केन्द्रीकरण में महानगरों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, जो आक्टोपस (अष्टभुज) की तरह सारे समाज को अपने चंगुल में दबोचे रहते हैं। सिर्फ मुगलकाल में जो अर्ध फौजी शासन था, हम राजधानी के फैलते प्रभाव को देख सकते हैं। लेकिन यह अल्पकालिक था। चूंकि राज्य विकेन्द्रित था और नगरों का प्रभाव सीमित था, ज्ञान-विज्ञान के उत्स गांव या ऋषियों के आश्रम ही थे, इससे सत्ता, सम्पत्ति और ज्ञान के केन्द्र अलग-अलग रहे और प्राचीन भारत उस आधुनिक बीमारी से बचा रहा, जहां सत्ता, सम्पत्ति और सूचना ('ज्ञान' शब्द इस संदर्भ में अनुचित है) एक जगह केन्द्रित हो जाते हैं। आधुनिक सभ्यता में ये इस हद तक एक दूसरे से जुड़ गये हैं कि हैरोल्ड लासवेल जैसे राजनीति शास्त्री ने यह सिद्धांत ही प्रतिपादित कर दिया है कि सत्ता से सुविधाओं को प्राप्त करना है। इसके विपरीत पुराणों और जातक कथाओं में वर्णित स्थितियों से ऐसा नहीं लगता कि सचमुच सामाजिक संबंध इन आदर्शों पर पूरी तरह आधारित रहे हों, लेकिन इस तरह सत्ता, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा के विभाजन का तत्त्व जन-मानस में होना स्वयं इनके केन्द्रीकरण के विपरीत माहौल बनाने में सहायक हो सकता है।

अगर हम ऊपर कही गयी बातों पर विचार करेंगे तो इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि भारतीयता, शारीरिक-भौतिक उपलब्धियों की जगह, जो हमारे विकास-क्रम में हमारे बंधु, पशुओं के करीब लाती हैं, उन आध्यात्मिक उपलब्धियों की तरफ का रुझान है, जो हमें पशुओं से अलग करता है। अगर आप धार्मिक प्रवृत्ति के हैं तो इसका अर्थ निवृत्ति मार्ग मान सकते हैं, अगर धर्म में रुचि नहीं है तो यह ज्ञान-विज्ञान, कला, संगीत आदि की तलाश हो सकती है। दोनों ही हालत में इससे उपभोक्तावादी और हथियारवादी संस्कृति के विपरीत हमें चेतना के जीवन की तरफ बढ़ने की ओर प्रेरणा मिलती है। *जीवित रहने के लिए भौतिक उपकरणों का होना अनिवार्य है, लेकिन भौतिक उपकरणों को ही जीवन का केन्द्र मान पशुवत बन जाता है। यही भारतीयता का मूल पाठ रहा है। इस दृष्टि से देश में उपभोक्ता संस्कृति की ओर बढ़ रहा रुझान और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की लाठी संस्कृति या शिव सेना की त्रिशूली संस्कृति भारतीयता के आदर्शों के एकदम विपरीत है, उनकी विरोधी है।*

भारतीयता क्या है, इसकी पहचान होने से हम उन परिस्थितियों का अनुमान लगा सकते हैं, जिनमें भारतीयता जीवित रह सकती है या खत्म हो सकती है। भारतीयता उपभोक्तावादी संस्कृति के विपरीत सरल स्वस्थ जीवन की आकांक्षा है। अगर यह हथियारी होड़ के विपरीत शांति और बंधुत्व का संदेश है तो इसका भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि यह किस हद तक उपभोक्तावादी संस्कृति और हथियारों की होड़ के विश्वव्यापी प्रभावों से अपने को मुक्त रख सकती है।

आजादी के बाद से भारत जिस राह पर चल रहा है, वह उसे इन दोनों विजातीय प्रभावों के गिरफ्त में ला रही है। यह राह न केवल भारतीयता के विपरीत है, बल्कि आजादी के आंदोलनकाल में देश में जो स्वदेशी और स्वावलंबन का संकल्प बना था, उसे भी खंडित कर रही है, भारतीयता के मूल तत्त्व तो दूर, अब तो स्वभाषा को भी, जो किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की प्रतिष्ठा का प्रतीक है, दूसरे दरजे पर रख दिया गया है, अभी भी अंग्रेजी राज-काज और शिक्षा के क्षेत्र में सर्वोच्च गौरव के स्थान पर है। राष्ट्रीय भाषाएं आज भी उपेक्षित हैं। इससे बढ़कर शर्मनाक बात क्या हो सकती है कि भारतीय तकनीकी संस्थान जैसी शिक्षण संस्थाओं में राष्ट्रभाषा में लिखे गये शोधपत्रों को मान्यता नहीं मिलती। लेकिन अगर भाषा बदल भी जाये तो इन संस्थाओं में प्रशिक्षण का ढांचा और उद्देश्य दोनों ऐसे हैं जिन्हें देश परिवेश या उसकी असली समस्याओं से कुछ लेना-देना नहीं। इसी का नतीजा है कि इनमें प्रशिक्षित तकनीकी विशेषज्ञ देश में अपने को बेकार पाते हैं और बड़ी संख्या में विदेशों में या देश की गैर तकनीकी व्यवस्था में नौकरी करते हैं।

इसी तरह विकास के क्षेत्र में पश्चिमी देशों का अंधानुकरण बिना यह सोचे समझे हो रहा है कि यह हमारे लिए उपयोगी है या

गलत। यह दृष्टि उस उपभोक्तावादी संस्कृति में निहित है जो पश्चिम द्वारा प्रचारित हर उपभोग की वस्तु को आवश्यक मानने लगती है और अपने देश में उपलब्ध बेहतर वस्तुओं को घटिया। चूंकि ऐसी वस्तुएं या तो पश्चिम से आयातित होती हैं या पश्चिम आयातित तकनीकी और मशीनों से निर्मित होती हैं, हमारी निर्भरता पश्चिमी देशों पर बढ़ती जा रही है। उपभोक्तावादी संस्कृति की जकड़ इतनी जबरदस्त होती है कि हम धीरे-धीरे उपयोगी तथा अनुपयोगी, स्वास्थ्यप्रद तथा जहरीली वस्तुओं में फर्क करने का विवेक खोते चले जाते हैं। और बाहर से आयातित जहरों के आदी हो जाते हैं।

एक उदाहरण सिगरेट है। सिगरेट जहर है, लेकिन लेटेस्टफैशन है : इसलिए हम इसकी आदत जरूर डालेंगे। टी. वी. से आंखें खराब होती हैं और छोटे बच्चे गंवार हो जाते हैं, लेकिन हम घर में टी. वी. जरूर रखेंगे क्योंकि यह भी लेटेस्ट है। आधुनिक ढंग के औद्योगिक विकास से प्रदूषण फैलता है और देश में बेरोजगारी फैलती है, लेकिन हम ऐसे ही उद्योग खड़ा करेंगे क्योंकि हमारी आयातित लतें इनके बिना पूरी नहीं हो सकतीं। हम ऐसी बहुमंजिली इमारतें खड़ी करेंगे जिनमें रोशनी और हवा प्रवेश नहीं पा सकें और फिर भारी खर्च कर रोशनी और हवा के लिए बिजली के बल्ब और पंखे लगायेंगे। ऐसा इसलिए क्योंकि यूरोप की जलवायु में खुले घर, रोशनी और धूप के बजाय ठंड को न्योतते हैं और इसलिए वहां के लोग ऐसे घर बनाने को मजबूर हैं, जो प्रकृति को बाहर रख सकें। अगर अमेरिका में पहनावे में क्रांति नहीं हुई होती और हिप्पियों का प्रभाव नहीं होता तो हमारे सम्पन्न लोग अभी भी गरमियों में थ्री पीस वूलेन सूट पहन कर रहते। लेकिन उसकी जगह अब जींस और स्टोनवाश ले रहे हैं। जो चीज कायम है, वह है हमारी उधार मानसिकता।

इसी तरह का अंधानुकरण हथियारों को भी जमा करने में हो रहा है। हम जानते हैं कि जो हमें हथियार देते हैं, वे अपने सबसे अच्छे हथियार हमें नहीं देते और इन दिये गये हथियारों की कमजोरियां भी जानते हैं; इसलिए कभी भी हम युद्ध में इन दाताओं का मुकाबला नहीं कर सकते और न इनकी मरजी के बगैर अपने कमजोर पड़ोसियों से भी कोई निर्णायक लड़ाई लड़ सकते हैं। फिर भी हम उन बच्चों की तरह, जिनमें हर नये खिलौने के प्रति ललक होती है, नये हथियारों के लिए बेचैन रहते हैं। इनकी खरीदगी में हम कर्ज में इतना डूबते जाते हैं कि वह आजादी जिसकी रक्षा हथियारों से करना चाहते हैं, पहले गिरवी पड़ जाती है।

यह सब नतीजे हैं, अपनी अस्मिता न पहचानने के, अगर हमने अपनी अस्मिता की तलाश की होती और उस भारतीयता को समझने की कोशिश करते जिसने हमें यूनान, रोम और मिस्र के हश्र से बचाया है तो हम अपनी समस्याओं का कोई दूसरा ही समाधान ढूंढ़ते।

प्रश्न है, क्या हम अपने विनाश के इतने करीब पहुंच गये हैं कि बचने का कोई उपाय नहीं? *अगर हम वर्तमान ढंग के विकास के रास्ते पर चलते रहे तो इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारा रोग असाध्य हो जायेगा, हम पश्चिमी दुनिया के ढंग की दसवें या बीसवें दरजे (पहला, दूसरा या तीसरा दरजा आदि की बात हम नहीं सोच सकते) की एक सभ्यता बनकर रह जायेंगे। समय के साथ हमारे देश में कुछ और महानगर खड़े हो जायेंगे जिनमें झुग्गियों में रहने वालों का अनुपात उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ ९०-९५ प्रतिशत हो जायेगा और गांव बिखरे बंजर बन जायेंगे। जिस तरह के दंगे आज जगह-जगह भड़क रहे हैं, उस तरह के दंगे हर गली-कूचे में जीवन के नियमित और स्थाई अंग बन जायेंगे।* लोग छोटी से छोटी सुविधाओं के लिए आवारा कुत्तों सा एक-दूसरे पर झपटते रहेंगे (दिल्ली में बसों में जगह पाने के लिए होने वाली मारधाड़ इससे कहीं अधिक भयानक होती है) और इस लूट-खसोट के बीच कहीं दूर-दराज घरों में से टी. वी. और वीडियो देखते हुए 'हम आधुनिक और सम्पन्न हैं' इसका भ्रम पैदा करते रहेंगे। पश्चिमी ढंग के विकास की हमारी यही परिणति 21वीं सदी में पहुंचते-पहुंचते होने वाली है। यह राष्ट्रीय अस्मिता के लोप की राह है।

लेकिन एक दूसरी संभावना भी है, जो वर्तमान निराशा के घोर अंधकार में कौंध जाती है। चूंकि वर्तमान की नियति अधिकतम लोगों को इसके वांछित फलों से बहिष्कृत करने की है, इसका घोर प्रतिरोध भी इसी में निहित है। वे असंख्य लोग जो दिनोंदिन इस विकास के नाम पर पहले प्राप्त सुविधाओं से भी वंचित होते रहे हैं, कब तक बरदाश्त करेंगे? वे लोग, जो विशाल योजनाओं के लिए गांवों से निष्कासित हो रहे हैं, वे जिनके जीवन के आधार वन नष्ट किये जा रहे हैं, वे ग्रामीण जो भूमिहीन हैं और जिनके लिए रोजगार की कोई व्यवस्था नहीं, इस विकास की व्यर्थता समझे बिना नहीं रह सकते। खुशकिस्मती से ऐसे लोगों का ही देश में विशाल बहुमत है। अगर इस विकास की असलियत उनकी समझ में आ गयी तो फिर वे इसका चक्का जाम करने को कटिबद्ध हो जायेंगे। जहां-तहां छिटपुट ढंग से लोगों का प्रतिरोध जग रहा है। अगर यह प्रतिरोध व्यापक हुआ तो प्रबुद्ध लोग, जो अब तक अपनी सारी प्रतिभा अंधी गली में ले जाने वाले वर्तमान विकास की प्रशस्ति में लगा रहे हैं, बाहरी संसाधनों की सिकुड़ती सीमाओं के बीच विकल्प के लिए उन्हें फिर विकास के लक्ष्यों पर नये सिरे से विचार करना होगा। ऊर्जा संकट, विश्व युद्ध से संहार की संभावना, पर्यावरण का संकट; इन सबके परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर उन्हें लगेगा कि हमारे पूर्वजों ने जिन मूल्यों के आधार पर लोक जीवन को गठित करने की कोशिश की थी, वे आज सिर्फ हमारे लिए ही नहीं, सारी दुनिया के लिए प्रासंगिक बन गये हैं। अगर यह चेतना पैदा हुई तो भारतीयता ही हमारा और औरों का भी भविष्य होगी। ❑

31 जुलाई : प्रेमचन्द-जयंती : नमन

पूस की रात

❑ मुंशी प्रेमचन्द

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा—सहना आया है, लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूं, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली—तीन ही तो रुपये हैं; दे दोगे तो कम्मल कहां से आयेगा? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी। उससे कह दो, फसल पर रुपये दे देंगे। अभी नहीं।

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्मल के बिना हार में रात को वह किसी तरह नहीं जा सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियां जमावेगा, गालियां देगा। बला से जाड़ों मरेंगे, बला सिर से टल जायेगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला—ला दे दे, गला तो छूटे। कम्मल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूंगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गयी और आंखें तरेरती हुई बोली—कर चुके दूसरा उपाय। जरा सुनूं, कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्मल? न जाने कितनी बाकी है, जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूं, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती में बाज आये। मैं रुपये न दूंगी—न दूंगी।

हल्कू उदास होकर बोला—तो क्या गाली खाऊं?

मुन्नी ने तड़पकर बोली—गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?

मगर यह कहने के साथ उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गयीं। हलकू ने उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जंतु की भांति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ में रख दिये। फिर बोली—तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी से सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजूरी करके लाओ, वह उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस।

हल्कू ने रुपये लिए और इस तरह बाहर चला मानो उसका हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-काटकर तीन रुपये कम्मल के लिए जमा किये थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तिष्क अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

2

पूस की अंधेरी रात! आकाश पर तारे ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊंख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बांस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े कांप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुंह डाले सर्दी से कूं-कूं कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों को गर्दन में चिपकाते हुए कहा—क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर पर पुआल पर लेट रह, तो यहां क्या लेने आये थे। अब खाओ ठंड, मैं क्या करूं। जानते थे, मैं यहां हलवा-पूरी खाने जा रहा हूं, दौड़े-दौड़े आगे-आगे चले आये। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरा ने पड़े-पड़े दुम हिलाई और अपनी कूं-कूं को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान-बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूं-कूं से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा—कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह राँड पछुआ न जाने कहां से बरफ लिए आ रही है। उठूं, फिर एक चिलम भरूं। किसी तरह रात तो कटे! आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है! और एक-एक भगवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाय तो गर्मी से घबराकर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ-कम्मल। मजाल है कि जाड़े का गुजर हो जाय। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।

हल्कू उठा और गड्ढे में से जरा-सी आग निकालकर चिलम भरी! जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा, पियेगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, जरा मन बहल जाता है।

जबरा ने उसके मुंह की ओर प्रेम से छलकती हुई आंखों से देखा।

हलकू—आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहां पुआल बिछा दूंगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अगले पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिये और उसके मुंह के पास अपना मुंह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म सांस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊंगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा। कभी इस

करवट लेटता, कभी उस करवट; पर जाड़ा किसी पिशाच की भांति उसकी छाती को दबाये हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्तेको देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाये हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यही है; और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुंचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिये थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पायी। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छतरी के बाहर आकर भूंकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया; पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़-दौड़ कर भूंकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता तो तुरंत ही फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की भांति उछल रहा था।

3

एक घंटा और गुजर गया। रात ने शीत की हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया। फिर भी ठंड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है। सप्तर्षि सभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जायेंगे तक कहीं सबेरा होगा। अभी पहर भर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का बाग था। पतझड़ शुरू हो गयी थी। बाग में पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियां बटोरूं और उन्हें जलाकर खूब तापूं। रात को कोई मुझे पत्तियां बटोरते देखे तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो; मगर अब तो बैठे नहीं रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिए बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे आते देखा तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा—अब तो नहीं रहा जाता

जबरू; चलो, बगीचे में पत्तियां बटोरकर तापें। टांठे हो जायेंगे, तो फिर आकर सोयेंगे। अभी तो रात बहुत है।

जबरा ने कूं-कूं करके सहमति प्रकट की और आगे-आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अंधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूंदे टप-टप नीचे टपक रही थी।

एकाएक एक झोंका मेंहदी के फूलों की खुशबू लिए हुए आया।

हल्कू ने कहा—कैसी अच्छी महक आयी जबरू! तुम्हारी नाक में भी सुगंध आ रही है?

जबरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी मिल गयी थी। उसे निचोड़ रहा था।

हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियां बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का एक ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पांव गले जाते थे। और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियां छू-छूकर भागने लगीं। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर संभाले हुए हों। अंधकार के उस अनंत सागर में वह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उतारकर बगल में दबा ली और दोनों पांव फैला दिये, मानो ठंड को ललकार रहा हो, तेरे जी में आये सो कर। ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा—क्यों जब्बर, अब ठंड नहीं लग रही है?

जब्बर ने कूं-कूं करके मानो कहा—अब क्या ठंड लगती ही रहेगी।

'पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठंड क्यों खाते।'

जबरा ने पूंछ हिलाई।

'अच्छा आओ, इस अलावा को कूद कर पार करें। देखे, कौन निकल जाता है। अगर जल गये बच्चा, तो मैं दवा न करूंगा।'

जबरा ने उस अग्निराशि की ओर कातर नेत्रों से देखा।

'मुन्नी से कल न कह देना नहीं तो लड़ाई करेगी।'

यह कहता हुआ वह उछला और अलाव के ऊपर से साफ निकल गया। पैरों में जरा लपट लगी; पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा—चलो-चलो, इसकी सही नहीं। ऊपर से कूदकर जाओ। वह फिर कूदा और अलाव के उस पार आ गया।

4

पत्तियां जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अंधेरा छाया था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी। जो हवा के झोंका आ जाने पर जरा जाग उठती थी; पर एक क्षण में फिर आंखें बंद कर लेती थी।

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गयी थी; पर ज्यों-ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाये लेता था।

जबरा जोर से भूंककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुंड उसके खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुंड था। उनके कूदने-दौड़ने की आवाजें कान में साफ आ रही थी। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वह खेत में चर रही हैं। उसके चबाने की आवाज चर-चर सुनायी देने लगी?

उसने दिल में कहा—नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहां! अब तो कुछ नहीं सुनायी देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ।

उसने जोर से आवाज लगायी—जबरा, जबरा।

जबरा भूंकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ था। इस जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असूझ जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगायी—लिहो-लिहो! लिहो!!

जबरा भूंक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी; पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किये डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला; पर एकाएक हवा का ऐसा ठंडा, चुभने वाला, बिच्छू के डंक का-सा झोंका लगा कि वह फिर बूझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठंडी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गाल फाड़ डालता था, नीलगायें खेत का सफाया किये डालती थीं। और हल्कू गर्म राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भांति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सबेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गयी थी। और मुन्नी कह रही थी—क्या आज सोते ही रहोगे? तुम यहां आकर रम गये और उधर सारा खेत चौपट हो गया।

हल्कू ने उठकर कहा—क्या तू खेत से होकर आ रही है?

मुन्नी बोली—हां, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला ऐसा भी कोई सोता है! तुम्हारे मड़ैया डालने से क्या हुआ?

हल्कू ने बहाना किया—मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दर्द हुआ कि मैं ही जानता हूं।

दोनों फिर खेत की डांड़ पर आये। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है, और जबरा मड़ैया के नीचे चित लेटा है; मानो प्राण ही न हों।

दोनों देख की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छाई थी। पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिन्तित होकर कहा—अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न-मुख से कहा—रात की ठंड में यहां सोना तो न पड़ेगा। ❑

जीवन को लीलता औद्योगिक विकास

❑ किशनगिरि गोस्वामी

यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि आजादी के 70 वर्षों के बाद भी हम अंध भौतिक विकास के बजाए *भूमि सुधार कार्य* को व्यवहारिक रूप से लागू नहीं कर पाये। इसी का परिणाम है कि एक किसान का बेटा (नक्सलवादी), दूसरे किसान के बेटे (सुरक्षा सैनिक) को गोली मार देता है। दोनों को गोलियां कभी (कु)शासन व्यवस्था की चमड़ी को छू नहीं पाती।

संयुक्त राष्ट्र संघ के *वैश्विक मौसम संगठन* अमरीका के *नासा* एवं *राष्ट्रीय महासागर वातावरण प्रशासन* जैसे विश्व के 3 बड़े संगठनों ने पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि को खतरनाक बताया है। सन् 1985 से अब तक हर महीने का तापमान 20वीं शताब्दी के पृथ्वी के औसत तापमान से ज्यादा है। अब तो हर दशक में होने वाली तापमान वृद्धि हर वर्ष में हो रही है। इससे स्पष्ट है कि हम विनाश की चौखट पर खड़े हैं। और अगर ऐसा ही रहा, तो सिर्फ लगभग 50 वर्षों में मनुष्य-जाति एवं अधिकांश जीव-सृष्टि नष्ट हो जायेगी।

यदि हम चाहते हैं कि पृथ्वी पर जीवन रहे, तो पृथ्वी के गर्भ में बचे खनिज ईंधन (कोयला, तेल, वायु) को पृथ्वी के गर्भ में ही रहने दें। *पृथ्वी जीवन देने के लिए है, नौकरी देने के लिए नहीं।* भारी उद्योग, विद्युत उत्पादन, परिवहन, रासायनिक उपभोग एवं मशीन आधारित खेती, कार्बन उत्सर्जन के मुख्य कारण हैं। अतः अब कार्बन उत्सर्जन बंद करने पर ही मनुष्य जाति एवं जीव-सृष्टि के बचने की संभावना है। उसमें भी देखना होगा कि एक ही समय कार्बन उत्सर्जन बंद हो तथा उसी समय कार्बन ढूंढ़ने वाली जमीन और महासागर के हरित द्रव्य बढ़ने लगें। अगर जीवन की रक्षा करनी है, तो विचारों की पुरानी चौली बदलनी होगी।

आमतौर पर आज भारत में प्रतिदिन लगभग 15 लाख टन कोयला जलाया जा रहा है। इससे रोज लगभग *1 लाख 14 हजार मेगावाट बिजली* उत्पादित होती है। इसके परिणाम स्वरूप लगभग *6 लाख टन राख* रोजाना नदियों, खाड़ियों और समुद्र में फेंकी जाती है। लाखों टन विषैली वायु सूक्ष्म राख के साथ वातावरण में छोड़ी जाती है। इन गर्म बिजली कारखानों को ठंडा रखने के लिए नदियों, भूगर्भ और सागर से हर दिन *60 हजार करोड़ लीटर पानी* खींचा जाता है। गर्म हुआ पानी फिर नदी-समुद्र में छोड़ा जाता है। इससे जीव-सृष्टि का प्रचंड नुकसान होता है। तापमान बढ़ता है। इसलिए भारत में औद्योगिक विकास एक भयंकर दुर्घटना है।

यह *कृत्रिम बुनियादी संरचना* और *उत्पादन का विकास* इस पृथ्वी की मूल प्राकृतिक व्यवस्था और जीवन को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। *दो भिन्न व्यवस्थाएं एक साथ नहीं चल सकती।* भौतिकता पर आधारित आधुनिकता का चुनाव किया गया, तो जीवन नष्ट हो जायेगा। अतः अब कृत्रिम भौतिक व्यवस्था का तत्काल त्याग आवश्यक है। थोड़ा भी विलंब प्राणघात सिद्ध होगा। समझदारी यह है कि *जीवन शैली के मुकाबले जीवन महत्त्वपूर्ण है।* अतः आज अगर मनुष्य जाति को बचाना है, तो जीवन-विरोधी औद्योगिक जीवन-शैली तुरंत छोड़नी होगी। हमारे तब के दार्शनिकों ने *सत्य के लिए सुख छोड़े* थे, बलिदान दिया था, पर आज के वैज्ञानिक *सुख के लिए सत्य को छोड़* रहे हैं। यह चिन्ताजनक है।

हममें से कईयों का सवाल है कि विकास के बिना *उदर निर्वाह* कैसे होगा। उन्हें लगता है कि उदर निर्वाह के लिए औद्योगिक शहरी-रचना में नौकरी चाहिए। इस पर विचार करने की जरूरत है। *'उदर निर्वाह'* शब्द का अर्थ—*पेट भरना और शरीर को चलाना।* यह काम *मशीन* आने से हजारों वर्ष पूर्व भी हो रहा था। आज भी उसी से होता है। परंतु ऐसा भ्रम फैला दिया गया है कि *नौकरी* और *व्यवसाय* से मिलने वाले *पैसे* से ही हम जीवित हैं। यह 'उदर निर्वाह' नहीं, *मोटर निर्वाह* है। प्रकृति में *मनुष्य के अलावा भी समस्त जीवन उदर निर्वाह करते हैं।* पर आधुनिक इन्सान जो कुछ करते हैं, उसे गलती से उदर निर्वाह कहते हैं।

दरअसल आज भी समस्त इन्सान पहले की तरह ही प्राकृतिक एवं जैविक खेती पर जिन्दा है। सभी शहरी लोग आज भी खेती के कारण ही जिन्दा हैं, क्योंकि *पैसे खाये नहीं जा सकते।* वास्तव में खेती के लिए *श्रम* की जरूरत होती है। पैसे की, मशीन की, बिजली की या किसी अन्य बाह्य ऊर्जा की नहीं। हमें सिर्फ *प्रतिष्ठा की पागल सोच* को छोड़ना होगा। प्राकृतिक खेती में कुछ भी पैसा न लगाकर असीमित फसल हो सकती है, हो रही है और ऐसा बताने वाले लोग मौजूद भी हैं।

यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि आजादी के 70 वर्षों के बाद भी हम अंध भौतिक विकास के बजाए *भूमि सुधार कार्य* को व्यवहारिक रूप से लागू नहीं कर पाये। इसी का परिणाम है कि एक किसान का बेटा (नक्सलवादी), दूसरे किसान के बेटे (सुरक्षा सैनिक) को गोली मार देता है। दोनों को गोलियां कभी (कु)शासन व्यवस्था की चमड़ी को छू नहीं पाती। न जाने *इस विकास* से हमें कब छुटकारा मिलेगा? ❑

गतिविधियां एवं समाचार

जनसंघर्षों ने रांची में लिया संकल्प

थियोलॉजिकल हॉल, गोस्नर मिशन कम्पाउंड, रांची में भूमि अधिकार आंदोलन के नेतृत्व में चल रहा दो दिवसीय जनसंघर्षों का राष्ट्रीय सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। देश के 12 राज्यों से आये 400 से भी अधिक जनसंघर्षों के प्रतिनिधियों ने सम्मिलित स्वर में जबरन भूमि अधिग्रहण, कॉरपोरेट लूट और सीएनटी-एसपीटी संशोधन अधिनियम के खिलाफ निर्णायक जंग का ऐलान किया।

सम्मेलन के अंतिम दिन के प्रथम सत्र को संबोधित करते हुए अखिल भारतीय किसान सभा से हन्नान मोल्लाह ने कहा कि भूमि अधिकार आंदोलन न सिर्फ जबरन भूमि अधिग्रहण के खिलाफ लड़ाई लड़ेगा बल्कि सामाजिक न्याय और समानता की लड़ाई को भी आगे बढ़ायेगा। उन्होंने कहा कि जल-जंगल-जमीन के खिलाफ लड़ाई केन्द्र और राज्य दोनों ही स्तरों पर तेज की जायेगी। राज्यों में भूमि अधिकार आंदोलन के नेतृत्व में विभिन्न जनसंघर्षों के साथ समन्वय स्थापित करने की कोशिश करेगा और इस समन्वय के दौरान दो दिवसीय सम्मेलन में हुई चर्चाओं को अपने-अपने क्षेत्रों में लोगों के बीच लेकर जायेंगे।

अखिल भारतीय वन श्रमजीवी यूनियन से रोमा मलिक ने कहा कि आज जनांदोलनों के साथियों के सामने परिस्थितियां संकटपूर्ण है। शासक वर्ग किसी भी तरह के विरोध के स्वर को बर्दाश्त नहीं कर रहा है। ऐसे में जरूरत है कि एक क्षेत्र में अलग-अलग मुद्दों पर लड़ रहे जनसंघर्ष आपस में एकता तथा समन्वय स्थापित करें तभी वह शासक वर्ग की दमनकारी नीतियों का मुकाबला कर पायेंगे। हमारी लड़ाई सिर्फ मुद्दों की नहीं है बल्कि वर्गीय लड़ाई है और हमें इस लड़ाई को आगे इंकलाब तक लेकर जाना है।

अ. भा. कृषक खेत मजदूर सभा के सत्यवान ने कहा कि जिस तरह से पूंजीपति वर्ग जबरन किसानों की जमीनें अधिग्रहित कर रहे हैं और उसे विकास का नाम देते हैं उसी प्रकार जनता को एकजुट होकर इन पूंजीपतियों के विशालकाय भवनों पर कब्जा करके वहां खेती करनी होगी। इस लड़ाई में महिलाओं की भूमिका अहम होगी।

जनसंघर्षों की भविष्य की रणनीति पर सम्मेलन में 30 सूत्रीय प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया, जिसमें भूमि सुधार, बीजों पर किसानों का हक, जल तथा प्राकृतिक संसाधनों पर समुदाय का हक, स्थानीय स्वशासी संस्थाओं की विकास नियोजन में भूमिका, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के निजीकरण पर रोक, साम्प्रदायिक तथा फासीवादी राजनीति का प्रतिरोध, दलित तथा आदिवासियों के साथ अन्याय का खात्मा, आंदोलनकारियों पर लगाये गये फर्जी केसों को वापस लेने, एएफएसपीए को रद्द करने तथा संवेदनशील क्षेत्रों में सैन्यीकरण खत्म कर शांति बहाने करने जैसे अन्य मुद्दे शामिल हैं।

सम्मेलन आगामी कार्यक्रमों की घोषणा के साथ समाप्त हुआ। **–दयामनी बारला**

प्राकृतिक चिकित्सा महिला विभाग का उद्घाटन

गांधी स्मारक निधि की ओर से स्थानीय स्मारक भवन में 6 जून 2017 को प्राकृतिक चिकित्सा महिला विभाग का उद्घाटन किया गया। मनुष्य प्रकृति के जितना करीब रहेगा उतना ही स्वस्थ रहेगा। गांधी स्मारक भवन में पहले से ही प्राकृतिक उपचार हो रहा है। डॉ. एम. पी. डोगरा, मुख्य चिकित्सक और डॉ. पूजा महिला चिकित्सक लोगों को प्राकृतिक उपचार दे रहे हैं। इसके साथ ही प्राकृतिक चिकित्सा का तीन साल का कोर्स भी कराया जाता है, जिसमें बहुत से लोग हर साल शिक्षा प्राप्त करते हैं। मुख्य अतिथि के रूप में हरदयाल सिंह कंबोज, एम. एल. ए., राजपुरा, पंजाब रहे और अध्यक्षता डॉ. सतिन्दर गोइन्दी ने की।

कार्यक्रम की शुरुआत गांधीजी के प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये' से हुई। भजन की प्रस्तुति अनुपमा शर्मा ने की।

डॉ. डोगरा ने प्राकृतिक चिकित्सा की जानकारी देते हुए कहा कि यह जीवन जीने की पद्धति है। इस पद्धति को अपनाकर हम बीमार होंगे ही नहीं। प्रकृति से दूर विकृति है। हर व्यक्ति को 5 से 7 पेड़ अवश्य लगाना चाहिए। डॉ. सतिन्दर गोइन्दी ने मनुष्य के आहार पर प्रकाश डाला और कहा कि हमारा जीवन कितना स्वस्थ है, यह हमारे आहार पर निर्भर करता है। के. के. शारदा ने कहा कि महिला चिकित्सा विंग शाम को भी खुलेगा। प्राकृतिक चिकित्सा से सौन्दर्य की देखभाल भी की जायेगी। आपने गांधी स्मारक भवन में बनने वाले म्यूजियम के लिए लोगों से आर्थिक सहयोग की अपील भी की।

मुख्य अतिथि हरदयाल सिंह कंबोज ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को श्रद्धा सुमन अपित करते हुए इस पवित्र स्थान को नमन किया और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की जरूरत पर बल दिया। पर्यावरण बचाने के लिए वे 100 गांवों में पांच-पांच पीपल के पेड़ लगाने वाले हैं और इसके लिए औरों को भी प्रेरित करेंगे। समाज को जागरूक करते हुए आपने कहा कि बच्चों को काम पर लगायें और गलत प्रवृत्तियों की ओर जाने से उन्हें रोकें। गांधी स्मारक भवन को मंदिर कहते हुए उन्होंने 51 हजार रुपये सहयोग देने की बात कही।

इस अवसर पर योग गुरु सुखदेव की सीडी का का विमोचन भी किया गया। मुख्य अतिथि को गांधी स्मारक निधि की ओर से एक शॉल भेंट कर सम्मानित किया गया। श्री सुभाष गोयल, प्रसिद्ध समाजसेवी ने गांधी स्मारक भवन को एक लाख रुपये का अनुदान दिया।

निदेशक डॉ. देवराज त्यागी ने सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया और संचालन उमा महाजन ने किया। **–देवराज त्यागी**

ध्रुव गुप्त की तीन कविताएं

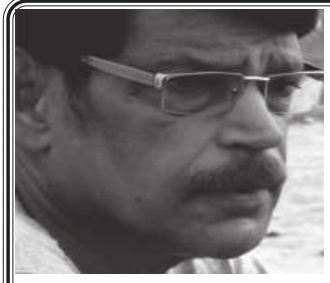

(एक)

मरूंगा मैं एक दिन
नहीं जानता
किस अपराधी की गोली
किस दंगाई के चाकू
किस गाड़ी के पहिये से
दमे से, रक्तचाप से, कैंसर से
पानी में डूबकर
धरती में समाकर
दोस्तों से या दुश्मनों से
नहीं चुन पाऊंगा अपनी मृत्यु
जैसे नहीं चुना था मैंने
अपना जीवन
अपना घर, गांव-देश
नाम-गोत्र, बंधु-बांधव
पत्नी-बच्चे
नहीं थी कोई सांस ऐसी
जो मेरी अपनी इच्छा से चली
अनायास ही सही
मगर कितना आत्मीय था जीवन
कितनी अपनी धरती
कितना अपना आकाश
हवा, नदी, पक्षी, फूल
कितने मोह, कितने पाश
कितनी स्नेहिल, गीली स्मृतियां
घटेगी मृत्यु भी अनायास
किसी न किसी दिन
लेकिन कहां ले जा पायेगी वह
इस मर्त्यलोक से दूर मुझे
इस मिट्टी में रहेगी
असंख्य जीवनरूपों में
घटने के लिए
मेरी काया
बहेगी किसी रक्त में
मेरे अंतर की शेष अग्नि
रोप जाऊंगा जाते-जाते
अपनी असंख्य इच्छाएं यहीं
इसी धरती में।

(दो)

नदी, तू एक यात्रा है
पहाड़ों से निकलकर
पत्थरों और उबड़-खाबड़
जमीन से होती हुई
समंदर तक की यात्रा
समंदर से फिर बादल
बादल से बारिश
बारिश से नदी
और नदी से समुद्र तक का
अंतहीन सिलसिला
जो मांगते हैं, वे मांगे
मैं तुझसे मुक्ति नहीं मांगता
अनंत जीवन-चक्र में
हमारी तरह जाने कब से
उलझी हुई तू
भला कैसे दे सकती है
किसी को भी मुक्ति
तू मेरा भरोसा है
कि सृष्टि के इस अनवरत
और असमाप्त खेल में
मैं निपट अकेला नहीं
सदा से तू भी है मेरी सहयात्री!

(तीन)

मैं जीवन भर लिखता रहा
नहीं लिख पाया कभी
पेड़ से सुन्दर कोई कविता
फूल से बेहतर कोई प्रेम पत्र
नहीं रख सका कभी
पूनम के चांद सा
कोई तिलिस्म
तितली के पंखों और
उड़ते पक्षी सा कोई चित्र
नदियों सी चंचलता
सागर सी गंभीरता
पर्वतों सी विशालता

मेरे शब्दों में नहीं आ सकी
वह शीतलता
जो बदन पर
गिरती बारिश की
चंद बूंदे दे जाती हैं
नहीं गुदगुदा सका मैं
किसी को भी वैसे
जैसे तेज गरमी में छूकर
हवा का हल्का-सा झोंका भी
भीतर तक गुदगुदा जाता है।

उम्र के इस पड़ाव पर मैंने जाना
कि मैं जो लिखता रहा
वह कविता तो बिलकुल नहीं थी
कविता गांव के उस बच्चे की
वही मासूमियत थी
जिसे जल्दी बड़े होने की कोशिश में
मैं बहुत पीछे छोड़ आया था। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।